जैन भारती

अक्टूबर 2012 • वर्ष 60 • अंक 10 • वार्षिक रु. 200.00

With best compliments from :

SMT MACHINES

INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting & Y Table, Snap Shears etc.

SMT MACHINES (INDIA) LIMITED

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com

Fine Strokes (09866291098)

शुभू पटवा
मानद संपादक

जैन भारती

वर्ष 60 • अक्टूबर, 2012 • अंक 10

विमर्श

11
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
अहिंसा : समता, संयम और करुणा एक विहंगम दृष्टि

17
साध्वी डॉ. ललितरेखा (खाटू)
स्वप्न : कारण और बोध

22
साध्वी जगवत्सला
मंत्र : उभयलोक व अलौकिक सुख का दाता

रपट

42
तेरापंथी सभा प्रतिनिधि सम्मेलन

•

आवरण
गौरीशंकर

अनुभूति

27
आचार्यश्री महाश्रमण
ज्ञान से पा सकते हैं अपुनरावृत्ति

30
साध्वी कंचनकुमारी
संगीत : आत्मानुभूति का उत्कृष्ट रूप

33
डॉ. रश्मिभाई झवेरी
एक चिंतनीय पहलू : सक्रिय व गंभीर होने की जरूरत

35
स्वामी रामतीर्थ
शांति : जरूरी है विश्व-व्यापकता का बोध

38
कहानी
भगवती नौटियाल
पलायन तो उड़ना होता है

41
कविता
जगदीश गुप्त की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
युवावस्था, ऊर्जा और सद्कार्य

शीलन

49
काका कालेलकर
मृत्यु साक्षात्कार : जीवन का सर्वांगीण अनुभव

52
मुनि धर्मचंद 'पीयूष'
वंदनीय हैं—संयत और सिद्धत्व

54
बालकथा
अनंतदेव शर्मा
मार झेलती हथेलियां और पुरस्कार

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

सवस्त्र या निर्वस्त्र

एक दिन बहुत सारे लोगों ने स्वामीजी से कहा—'यदि आप वस्त्र न रखें, तो आपकी करनी (तपस्या) बहुत कठोर होगी।'

तब स्वामीजी ने कहा—'हमने श्वेतांबर शास्त्रों के आधार पर घर छोड़ा है। उनमें तीन चादर, चोलपट्टा आदि रखने का विधान है, इसलिए हम वस्त्र रखते हैं। यदि दिगंबर शास्त्रों के प्रति विश्वास हो जाए, तो हम वस्त्रों को छोड़ नग्न हो जाएंगे, फिर वस्त्र नहीं रखेंगे।'

रोटी के लिए निरवद्य क्रिया कैसे छोडूं?

एक बहिन बहुत बार स्वामीजी से आहार लेने के लिए प्रार्थना करती थी—'कभी मेरे घर भी आप गोचरी के लिए पधारें।'—एक दिन स्वामीजी उसके घर पर पधारे। वह बहुत राजी हुई और सभक्ति आहार देने लगी।

तब स्वामीजी ने पूछा—'लगता है, तुम्हें हाथ तो धोने पड़ेंगे?'

तब वह बोली—'हाथ तो धोने पड़ेंगे।'

तब स्वामीजी ने पूछा—'हाथ सजीव पानी से धोओगी या गरम पानी से?'

तब वह बोली—'गरम पानी से धोऊंगी।'

तब स्वामीजी बोले—'कहां धोओगी?'

उसने नाली की ओर संकेत करते हुए कहा—'यहां धोऊंगी।'

तब स्वामीजी ने कहा—'यह पानी कहां गिरेगा?'

तब उसने कहा—'यह नीचे गिरेगा।'

स्वामीजी ने कहा—'नीचे पानी गिरने से वायुकाय आदि जीवों की हिंसा होगी, इसलिए मैं तुम्हारा आहार नहीं ले सकता।'

तब वह बोली—'आप तो आहार देख कर ले लें। हम गृहस्थ हैं और अपना कार्य करते हैं, उसमें आपको क्या आपत्ति होती है? हमारी सांसारिक क्रिया हम कैसे छोड़ेंगे?'

तब स्वामीजी ने कहा—'हे बहिन! इस कर्म-बंधन करने वाली तुम्हारी सावद्य-क्रिया को भी तुम नहीं छोड़ती हो, तो रोटी के लिए मैं अपनी निरवद्य-क्रिया को कैसे छोडूं?'—यह कह कर स्वामीजी वहां से चले गए।

अनुशासन जीवन की अनिवार्य अपेक्षा है। इसलिए वह हर क्षेत्र में आवश्यक है। धर्म-संघ तो उसके आधार पर ही टिके रहते हैं। राज्य संस्था और समाज संस्था में तो दंड-शक्ति, सैन्य-शक्ति तथा अर्थ-शक्ति का उपयोग विहित है। वहां साम, दाम, दंड और भेद—ये चारों नीतियां मान्य हैं। जबकि धर्म संस्था इन सबसे परे मात्र आत्मानुशासन के आधार पर ही टिकी हुई है। अतः धर्म-संघ में यदि अनुशासन शिथिल हो जाता है, तो वह मात्र ढांचा भर रह जाता है। कहा भी है—**'आणाजुत्तो संघो सेसो पुण अट्ठिसंघाओ'**—जिस धर्म संस्था में आज्ञा है, अनुशासन है—वह संघ है। शेष अस्थियों के ढांचा भर हैं।

जैसे चेतना-शून्य अस्थिपंजर का कोई अर्थ नहीं होता, वैसे ही अनुशासन-शून्य धर्म-संघ लोक-चेतना को प्रभावित नहीं कर सकता। जिस प्रकार नमक के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता, वैसे ही अनुशासन के बिना धर्म भी शोभित नहीं होता। जिस धर्म-संघ के साधक अनुशासनहीन होते हैं, उन्हें कांच का पात्र, मोम के गोले और एरंड के वृक्ष से उपमित किया गया है। कांच का पात्र साधारण प्रहार से ही टूट जाता है। मोम का गोला थोड़ा-सा ताप पाते ही पिघल जाता है। एरंड का वृक्ष हवा के हलके-से झोंके से ही अस्थिर हो जाता है—इसी प्रकार अनुशासनहीन व्यक्ति थोड़ी-सी प्रतिकूल परिस्थिति में अपना संतुलन खो बैठता है। इसलिए धर्म क्षेत्र में अनुशासन का बहुत बड़ा मूल्य है।

—आचार्यश्री तुलसी

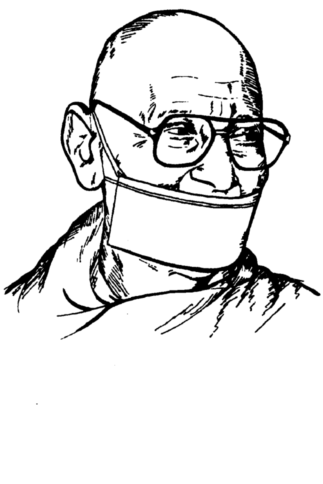

यदि आदमी मस्तिष्क की शक्ति का अपव्यय रोक दे, तो वह अपने जीवन में बहुत सफल हो सकता है। संवेगों के कारण शक्ति का काफी अपव्यय हो जाता है। जब मस्तिष्क इंद्रियों के साथ चलता है, शक्तियां तभी क्षीण होती हैं। आंख खुली है, आदमी इधर-उधर देख रहा है—वह नहीं जानता कि मस्तिष्क को इसके लिए कितना काम करना पड़ता है। उसीसे शक्तियां क्षीण होती हैं। आज का शरीर-शास्त्री और मानस-शास्त्री जानता है कि आंख से देखते समय तंत्र को कितना परिश्रम-प्रयत्न करना पड़ता है। पूरा तंत्र ही सक्रिय हो जाता है। उसे शक्तियां जगानी पड़ती हैं और निरंतर क्रियाशीलता शक्ति का अपव्यय करती है। आदमी निरंतर सक्रिय रहता है। सामने कोई चीज आई, आदमी देखने लग जाता है। कुछ आवाज आई, वह सुनने लग जाता है। नाक, कान, आंख, जीभ और त्वचा—ये सभी इतने सक्रिय रहते हैं कि विश्राम लेते ही नहीं। कभी एक संवेद आता है, कभी दूसरा। कभी कोई संवेद उभरता है, कभी कोई संवेद उभरता है। सक्रियता बनी रहती है। यह ध्रुव सिद्धांत है कि जहां क्रिया है, वहीं शक्ति का व्यय है। जहां अक्रिया है, वहां शक्ति का संरक्षण है। हम अतिक्रिया के कारण शक्ति का सही उपयोग नहीं कर पाते। जो आवश्यक कार्यों के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहता है, आगे बढ़ना चाहता है, उसे संवेदों पर नियंत्रण करना जरूरी है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रवृत्ति के तीन आधार हैं—मन, वाणी और शरीर। मन से व्यक्ति सोचता है, वाणी से बोलता है और शरीर से अन्यान्य क्रियाएं करता है। चिंतन, भाषा और शारीरिक क्रियाओं का नियामक और परिष्कारक तत्त्व है—आत्मानुशासन।

जैन आगम उत्तराध्ययन में उपदिष्ट है—**'वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य'**—श्रेष्ठ यही है कि व्यक्ति संयम और तप के द्वारा आत्मानुशासन को साधे।

पर, क्या आत्मा पर अनुशासन किया जा सकता है? कहां है—आत्मा हमारे सम्मुख? हम न उसे आंखों से देख पाते हैं, न ही उसे छू पाते हैं—फिर कैसे करें उस पर अनुशासन?

दरअसल आत्मा हमारी दृष्टि का विषय ही नहीं है। अतः हम उस पर सीधा अनुशासन नहीं कर सकते। हम आत्मा को नहीं पहचानते, पर मन, वचन, शरीर और इंद्रियों से हम बहुत परिचित हैं और इन पर नियंत्रण कर लिया जाए तो आत्मानुशासन स्वतः सिद्ध हो जाएगा।

आत्मानुशासन का अर्थ है—अपने शरीर पर अनुशासन। आत्मानुशासन का अर्थ है—अपनी इंद्रियों पर अनुशासन। आत्मानुशासन का अर्थ है—अपनी वाणी पर अनुशासन। आत्मानुशासन का अर्थ है—अपने मन पर अनुशासन। आत्मानुशासन का हृदय है—शरीर, इंद्रियां, वाणी और मन। इनको पाप या अकरणीय कार्यों में प्रवृत्त नहीं होने देना ही आत्मानुशासन है। चिरपोषित राग-द्वेषात्मक संस्कारों से अभिप्रेरित होकर मन, वाणी, इंद्रियां और शरीर दुष्प्रवृत्त होते रहते हैं। इन पर नियंत्रण का अभ्यास करना ही आध्यात्मिक साधना है और क्षायोपशमिक भाव के संघर्ष का नाम है साधना।

—आचार्यश्री महाश्रमण

प्रसंग

युवावस्था, ऊर्जा और सद्कार्य

यदि आप बाजार के इशारों से निदेशित होते हों, तो कुछ भी कहना अर्थहीन रहेगा और यदि आप बाजार को छोड़ तो नहीं पा रहे हैं, पर अपनी बुद्धि-समझ का भी साथ ही इस्तेमाल भी कर रहे हैं—तो आपसे बहुत आशाएं हैं। पर, यदि आप अपनी बुद्धि और अपना विवेक जाग्रत कर, समझते हुए कुछ कर रहे हैं, तो कुछ कहने-बताने की ज़रूरत ही नहीं रह जाती। एक बार एक प्रसंग में आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की एक बात पर कहा था '...... 'अब इसे बांधने (कहने-समझाने) की जरूरत नहीं, यह जो कुछ कर रहा है—अपना (उनका) ही काम कर रहा है।'—आचार्यश्री तुलसी ने एक नौजवान के लिए यह बात कही थी। इसलिए कि वह अपनी रोटी भर ही न सेंक कर, ऐसे अन्य कार्य भी करता रहा—जिन्हें वे सद्कार्य समझते थे। ये दोनों ही महान आत्माएं (आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) अब सदेह नहीं हैं, पर उनकी प्रेरणा हमारे मध्य है। वे प्रेरणा-पुंज थे।

मुझे संत राबिया की एक घटना का स्मरण हो रहा है। मैंने यह कहीं पढ़ा कि वे कबूतरों को दाना खिला रही थीं और वहीं पास आकर कुछ नौजवान खड़े यह सब देखने लगे थे। राबिया हंस पड़ीं। उनकी मुस्कराहट खिलखिलाहट में बदल गई। नौजवानों में से एक ने इसका कारण पूछा। राबिया का उत्तर था—'आप जैसे सजीले, सुंदर नौजवानों को देखा जो है।'—वे अपना उत्साह रोक नहीं पा रही थीं। आगे बोलीं—'जिस धरती पर ऐसे सुंदर, गठीले, सजीले नौजवान हों, तो वह धरती कितना भाग्यशाली है। मेरी हंसी वास्तव में खुदा के प्रति आभार है।'—इतना कह राबिया ने फिर कबूतरों को दाना चुगाना शुरू कर दिया। नौजवान वहीं खड़े रहे।

कुछ ही देर हुई कि राबिया की आंखें सजल हो उठीं। वे रो पड़ीं।—'अब क्या हुआ?'—बेचैन युवकों ने रोने का कारण पूछा। राबिया ने बताया—'रोना इसलिए आ गया कि यदि सारे युवा अपनी शक्ति को सर्जनात्मक कामों में लगाएं, सद्कार्यों में लगाएं—तो इस जगत का कल्याण हो जाए, पर ऐसा हो नहीं रहा। इसीलिए मुझे रोना आ गया।'

राबिया की यह व्यथा हर उसकी है, जो नौजवानों की ऊर्जा, सामर्थ्य और क्षमता पर भरोसा रखते हैं। आचार्यश्री तुलसी ऐसे ही सत्पुरुषों में से एक थे। वे स्वप्नद्रष्टा थे। वे सपने देखते थे और फिर उसे साकार रूप देने में लग जाते थे। आने वाला महीना (नवंबर) उनका निन्यानवेंवां जन्मोत्सव का होगा। कार्तिक शुक्ला द्वितीया उनका जन्म दिन है। गहरे तिमिर के बाद वे इस धरती पर आए और सच ही 'दूज के चांद' हो गए। सच ही वे 'दूज के चांद' थे, पर किस अर्थ में? लोक के इस अर्थ में नहीं कि 'दूज का चांद' तो बमुश्किल नजर आता है। लोक का यह भी अर्थ तो है कि घने तमस को नष्ट करने का काम यही 'दूज का चांद' करने लगता है। हारता नहीं; अनवरत करता जाता है। आचार्यश्री तुलसी भी कभी हारे नहीं। जिन नौजवानों को उठ खड़े होने, संगठित होकर अपनी ऊर्जा को सर्जनात्मक कामों में लगाने का निनाद आचार्यश्री तुलसी ने किया था, वे नौजवान असल में उस समाज से आते हैं, जिनके हाथों में 'बाजार' की चाबी होती रही है।

एक ऐसे बड़े वर्ग को आगे लाने में और उनकी ऊर्जा को सद्कार्यों में लगाने का जो बीड़ा आचार्यश्री तुलसी ने उठाया, वह सन् 1964 में जाकर फलीभूत होता नजर आया। आचार्यश्री तुलसी स्वयं भी तब 50-52 वर्ष के रहे होंगे। उनकी ही प्रेरणा से बीकानेर में 17 सितंबर, 1964 को अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद की स्थापना हुई और इसके पहले संयोजक बने श्री माणकचंद बोथरा।

तेरापंथ युवक परिषद का जिक्र इस 'प्रसंग' में अभी होना स्वाभाविक है। इसलिए कि आने वाले समय (सन् 2013) में आचार्यश्री तुलसी का जन्म शताब्दी वर्ष शुरू हो रहा है और उससे लगभग एक साल पहले तेरापंथ युवक परिषद ने अपनी स्थापना के रोज जो एक मिसाल कायम कर दी है, वह न केवल उल्लेखनीय है, अनुकरणीय भी है। बीती 17 सितंबर, 2012 को अ.भा. तेरापंथ युवक परिषद ने एक वृहद रक्तदान कार्यक्रम किया और कोई 97,000 'यूनिट' से अधिक रक्त देश भर की उसकी 276 शाखाओं ने संकलित कर एक ही दिन में होने वाले रक्तदान का एक कीर्तिमान खड़ा कर दिया। यह सब किसकी प्रेरणा का फल है? उनकी, जिनका जिक्र हमने यहां किया है। इसकी नींव में जहां आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी हैं, वहीं आज तेरापंथ के वर्तमान अधिष्ठाता आचार्यश्री महाश्रमणजी की उत्प्रेरणा का प्रतिफल प्रकटतः है।

संत राबिया और उनके सम्मुख रहे तत्समय के नौजवानों का इस प्रसंग में उल्लेखित संवाद आचार्यश्री महाश्रमणजी को अवश्य स्मरण रहा होगा। सन् 1964 में जब युवक परिषद की स्थापना आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में हुई थी, तब वे 50-52 वर्ष के रहे होंगे, तो आज जब देश के चालीस हजार से अधिक नौजवान आचार्यश्री महाश्रमणजी के किसी संकेत की आतुर प्रतीक्षा करते हैं, तो आचार्यश्री महाश्रमणजी भी संभवतः 50-55 के आयु-वर्ग में ही होंगे। क्या यह मानें कि युवकोचित ऊर्जा के लिए आयु की गणना अधिक मानी नहीं रखती? आखिर आचार्यश्री महाश्रमणजी की 'युवा'-धड़कन को किसने मापा है? युवकों की ऊर्जा का जो उपयोग पिछली 17 सितंबर को हुआ है—निश्चय ही 'राबिया' खिलखिला रही हैं।

पर, यह खिलखिलाहट क्या क्षणिक भर की है? नहीं, आचार्यश्री महाश्रमणजी इस ओर निश्चय ही सजग हैं। देश के युवजनों की क्षमता और ऊर्जा पर उनको भरोसा है। उनको भरोसा है—युवजनों की सर्जनात्मक क्षमता पर और इसलिए यह भरोसा भी रहना चाहिए कि 'सद्कार्य' कभी तात्कालिक नहीं होते। ऊर्जा का संचरण और उसका चिरंतन उपयोग निरंतर चलने वाली क्रिया है, कुंडलीमार संग्रहण से नहीं, अनवरत उपयोग से ही यह निरंतर बढ़ती है। यह खर्ची ज्यों-ज्यों होती रहेगी, त्यों-त्यों इसमें बढ़ोतरी भी होती रहेगी। अतः युवजनों से जो आशाएं हैं, वे भी सदा फलीभूत होती रहेंगी। क्या ऐसा ही महाश्रमणजी सोचते हैं? हां! ऐसा ही।

देश की आधी आबादी आज युवजनों की है। अनुमान है कि कुल आबादी का लगभग आधा युवक-युवतियां हैं। जाहिर है कि हमारा यह भारत युवा शक्ति से पूरी तरह सराबोर है। तब यह देखना भी तो युवजनों का ही काम है कि वे अपने को किस दिशा में ले जाएं? वे किस दिशा में जाएं! यह भी बताने की बात नहीं कि जो समस्याएं इस समय विकराल रूप से हमारे सामने हैं, वे भी युवजनों के कारण ही हैं। जिस 'बाजार' की बात हम कह चुके हैं, जिसे हम उत्तरदाई ठहराते रहे हैं—वह भी उन्हीं से चालित है। समस्याएं और संकट की वजह जब पता हो जाती है तो समाधान का रास्ता कठिन नहीं रह पाता। समूचा उत्तरदायित्व यदि युवजनों पर है, तो उसके निर्वाह और उसके लिए बनने वाली राह भी उन्हीं से निकलनी संभव है।

मानना होगा कि यही राह 17 सितंबर को हमारे सामने आई। हमें यह भी मानना चाहिए कि उस राह पर चल पड़े ये युवजन अब पीछे देखने वाले नहीं। पर, जैसा हमने कहा कि यह सब निरंतर चलने वाली क्रियाएं होनी चाहिए, अतः रक्तदान से शुरू इस अभियान को एक ऐसी मुहिम में बदलना जरूरी है, जहां समस्याओं की विकरालता से ग्रस्त होता कोई न दीखे। नशा, अंधी और नग्न फैशन, चारित्रिक अशुद्धता, कठमुल्लापन और संकीर्ण दायरों में बंटा समाज, निहित स्वार्थ और बेमेलपन—आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जो समाज के लिए दीमक और जोंक की तरह हैं।

आज का युवजन इनसे निजात पाए और अपनी ऊर्जा, विवेक व क्षमता को द्विगुणित करे—ऐसी राह बननी-बनानी होगी। और, हां—उस पर चलने-चलाने की उत्प्रेरणा भी निरंतर फूंकनी ही होगी।

—शुभू पटवा

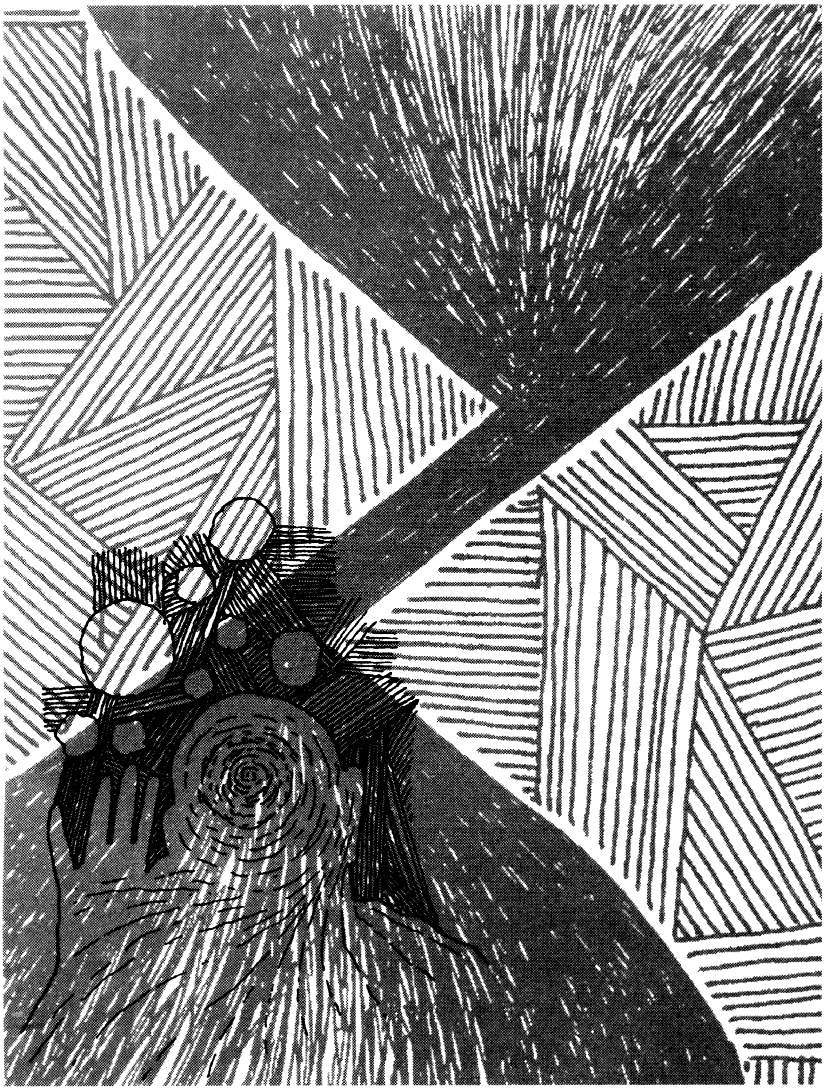

विमर्श

अहिंसा केवल आचरण का स्थूल नियम नहीं, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं भी द्वेष की गंध नहीं रहती—वह अहिंसा है।

—महात्मा गांधी

2 अक्टूबर : मोहनदास कर्मचंद गांधी जन्म जयंती: का स्मरण करते हुए

सब जीवों के प्रति समता की अनुभूति, यह समता का एक आकार है। सब जीव—शरीर, जाति, वर्ण आदि नानात्व से विभक्त हैं। विभक्त में ही अविभक्त को खोजना—अहिंसा का मुख्य आधार है और समतावादी दृष्टि का विकास हुए बिना यह खोज संभव नहीं बनती। महावीर भेद और अभेद—दोनों को एक साथ स्वीकार करते थे। केवल भेद और केवल अभेद—दोनों व्यवहार और तर्क से उलझे हुए हैं। भेद और अभेद का समन्वय एक समाधान है। भेद में अभेद खोजने पर ही समता का सिद्धांत प्राणवान बनता है।

2 अक्टूबर गांधी जयंती
☐
11 अक्टूबर जयप्रकाश जयंती
☐
अवसर विशेष

अहिंसा : समता, संयम और करुणा एक विहंगम दृष्टि

❋ आचार्यश्री महाप्रज्ञ

हिंदुस्तान में दो परंपराएं—श्रमण और ब्राह्मण मुख्यतः और बहुत प्राचीन हैं। भगवान महावीर श्रमण परंपरा के चौबीसवें तीर्थंकर थे। श्रमण परंपरा में-'सम' शब्द को सर्वाधिक मूल्य दिया गया। प्राकृत का 'सम' शब्द संस्कृत में तीन रूपों में व्याख्यायित हुआ है : सम—समता, शम—शांति, श्रम—तपस्या, स्वावलंबन और आत्म-निर्भरता। भगवान महावीर का मुख्य सिद्धांत यही त्रिपदात्मक 'सम' है। कालक्रम से यह घटित हुआ कि समता पृष्ठभूमि में चली गई और अहिंसा उभर कर सामने आ गई। क्या उक्त त्रिपदी के बिना अहिंसा की कल्पना की जा सकती है?

अहिंसा को जैन धर्म का मुख्य सिद्धांत माना गया है। यह अनुश्रुति है। यह जैन धर्म की पहचान है। इसे अवांछनीय नहीं कहा जा सकता। यही परम धर्म है, इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किंतु, दार्शनिक इतिहास का अध्ययन इस धारणा को स्वीकृति नहीं देता। उसके अनुसार महावीर का मूल सिद्धांत समता रहा है और अहिंसा उसका एक अंग माना गया है।

हिंसा का बीज : क्रिया का समुच्चय

प्राण का अतिपात जीवन की समाप्ति है। हिंसा की धारणा इसी से जुड़ी हुई है। यह स्वाभाविक भी है। फल पर जितना ध्यान केंद्रित होता है, उतना बीज पर नहीं होता। हिंसा का बीज है—क्रिया का समुच्चय। उसे अनेक रूपों में देखा जा सकता है। महावीर के दर्शन में इसका वर्गीकरण इस प्रकार है—1. मृषावाद, 2. अदत्तादान, 3. मैथुन, 4. परिग्रह, 5. क्रोध, 6. मान, 7. माया, 8. लोभ, 9. राग, 10. द्वेष, 11. कल, 12. अभ्याख्यान, 13. पैशुन्य, 14. परपरिवाद, 15. रति-अरति, 16. माया-मृषा, 17. मिथ्यादर्शन।

मानसिक विषमता

बीज की सत्ता, उर्वर भूमि, जल का सिंचन—सबकुछ मिले और बीज अंकुरित न हो—यह वैसी ही बात है, जैसे कि वायुमंडल में मीथेन, ओजोन,

नाइट्रोऑक्साइड तथा कार्बनडॉयोक्साइड की मात्रा बढ़े और पृथ्वी का तापक्रम न बढ़े।

मनुष्य का दृष्टिकोण आराम के प्रति प्रतिबद्ध है। शरीर को जितना आराम दिया जा सके, जितनी सुविधा दी जा सके—उसी में सार्थकता की अनुभूति होती है। वैज्ञानिक स्पर्धा भी बुद्धिगम्य नहीं है। नए-नए आविष्कार और नए-नए पदार्थों का निर्माण, बाजार में उनकी भीड़, उपभोक्ता द्वारा उनका उपयोग—एक चक्र बना हुआ है। कुछ वर्षों तक यह चलता रहता है, फिर अवांछनीय परिणाम की घोषणा हो जाती है। उपभोक्ता इतना अभ्यस्त हो जाता है कि अनिष्ट परिणामों को जानते हुए भी उन्हें छोड़ नहीं सकता। इसी कारण पर्यावरण और परिवेशिकी में असंतुलन हो रहा है। यह जानते हुए भी वैज्ञानिक अपना हाथ पीछे नहीं खींच पाते। यह मानसिक विषमता है। इसी से हिंसा को संजीवन मिलता है।

मानसिक विषमता का एक दूसरा रूप है—परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित न कर पाना। मनचाही वस्तु मिलने पर खुश होना और न मिलने पर नाखुश होना—यह मन की विषम स्थिति है। सुख-दुख, जीवन-मृत्यु, निंदा-प्रशंसा—ये सब द्वंद्वात्मक स्थितियां हैं। मन की विषमता को इस एक भाषा में ही समझा जा सकता है।

अहिंसा का मुख्य आधार—समता

सब जीवों के प्रति समता की अनुभूति, यह समता का एक आकार है। सब जीव—शरीर, जाति, वर्ण आदि नानात्व से विभक्त हैं। विभक्त में ही अविभक्त को खोजना—अहिंसा का मुख्य आधार है और समतावादी दृष्टि का विकास हुए बिना यह खोज संभव नहीं बनती। महावीर भेद और अभेद—दोनों को एक साथ स्वीकार करते थे। केवल भेद और केवल अभेद—दोनों व्यवहार और तर्क से उलझे हुए हैं। भेद और अभेद का समन्वय एक समाधान है। भेद में अभेद खोजने पर ही समता का सिद्धांत प्राणवान बनता है।

विषमता : कारण और निवारण

व्यावहारिक जगत में मन की विषमता ही अनेक विषमताओं को जन्म देती है। व्यवहार और सिद्धांत की दूरी अवीतराग मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। बहुत लोग उस दूरी को पाटने का प्रयत्न ही नहीं करते। कुछ लोग उस दिशा में प्रयत्न करते हैं, पर लक्ष्य तक पहुंचने में बहुत लंबा समय लग जाता है।

आर्थिक विषमता ही मानसिक विषमता की एक निष्पत्ति है। समतावादी चेतना का विकास हुए बिना इस समस्या का समाधान संभव नहीं है। जातिगत विषमता की पृष्ठभूमि में भी मानसिक विषमता पल रही है। व्यक्ति के मन में छिपा हुआ अहंकार अपनी उच्चता के आयाम खोजता है। दूसरों की निम्नता के बिना उच्चता अर्थवान नहीं मानी जाती। इसलिए वह जाति, रंग आदि-आदि के माध्यम से मद का पोषण करता है। समाज में विषमता तभी पनपती है।

महावीर द्वारा प्रतिपादित समता को व्यापक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। अहिंसा की समझ के लिए यह बहुत आवश्यक है। व्यापक समझ के अभाव में एक मनुष्य चींटी को आटा डालने में जागरूक रहता है और मनुष्य का शोषण करने में सकुचाता नहीं है। यह विरोधाभास समता की समझ के द्वारा ही निरस्त हो सकता है।

उग्रवाद का मूल : निर्ममता

समस्या हिंसा की है और समाज हिंसा नहीं चाहता। समस्या उग्रवाद की है और समाज को उग्रवाद पसंद नहीं। जो पसंद नहीं है, वही बढ़ रहा है। महावीर ने कहा था—'जो सामने है, उसे देखो। साथ-साथ उसे भी देखो, जो सामने नहीं है।'—हिंसा और उग्रवाद का मूल क्रूरता और निर्ममता है। समाज का शक्तिशाली वर्ग दुर्बल वर्ग के प्रति अत्यधिक निर्मम है। यह निर्ममता ही हिंसा और उग्रवाद का मूल है।

जटिल है अर्थ की समस्या

समाज का एक छोटा भाग साधन-संपन्न है। उसका बड़ा भाग साधन-विहीन है। संपन्नता और विपन्नता का तारतम्य एक सीमा तक क्षम्य भी माना जा सकता है, किंतु आज तो वह असीम बन रहा है। दुर्बल वर्ग के सामने रोटी-रोजी की समस्या जटिल बनी हुई है। भरपेट रोटी न

मिले, उस स्थिति में क्या हिंसा और उग्रवाद को रोका जा सकता है? क्या पुलिस के डंडे में भूख की ज्वाला को मिटाने की क्षमता है? अर्थ और काम—ये दोनों जटिल समस्याएं हैं। इन दोनों में अर्थ की समस्या अधिक जटिल है। अर्थ का ममत्व व्यक्ति को शेष सबके प्रति निर्मम बना देता है।

युगीन प्रश्न

अहिंसा, दया और करुणा की चेतना को जगाने के अनेक प्रयत्न किए जाते रहे हैं। वे सफल नहीं हो पाए। यदि कहीं सफल हुए, तो बहुत कम मात्रा में। धर्म के सामने आज एक प्रश्न है। एक प्रबुद्धि व्यक्ति ने कहा—'धर्म पूंजीपतियों को सहारा देने के लिए है। अहिंसा और करुणा की बात उनके असामाजिक कार्यों पर आवरण डालने के लिए है। पूंजीपति लोग एक ओर गरीब का शोषण करते हैं, दूसरी ओर धर्म के नाम पर कुछ पैसे लगा कर प्रतिष्ठा पाते हैं।'

वास्तव में धर्म का प्रारंभ बिंदु त्याग है। अर्थ के साथ उसका सीधा संबंध ही नहीं है। फिर वह पूंजीपति को सहारा कैसे दे सकता है? वह शोषण को बढ़ावा कैसे दे सकता है? वह आदमी को निर्मम कैसे बना सकता है?

एक नहीं है—अनुयाई और धार्मिक

हम इस सचाई को भूल गए हैं कि धर्म का अनुयाई होना और धार्मिक होना कभी भी एक नहीं हो सकता। अनुयाई का अर्थ—संप्रदाय का अनुयाई होना है और धार्मिक का अर्थ है—अहिंसा व्रत का आराधक। धर्म का अनुयाई शोषण भी कर सकता है, क्रूर व्यवहार भी कर सकता है, दूसरों के प्रति निर्मम भी हो सकता है। भीड़ अनुयाइयों की है, धार्मिकजनों की भीड़ कहीं नहीं है। हम धर्म के अनुयाई और धार्मिक का भेद भुला कर मकड़ी की भांति अपने ही जाल में उलझ जाते हैं।

धार्मिक की परिभाषा

महावीर ने धर्म के अनुयाई और धार्मिक के बीच एक भेद-रेखा खींची। जो अहिंसा का व्रती है—वह धार्मिक है। जो व्रती नहीं है, वह धर्म का अनुयाई है। व्रती मनुष्य कभी भी पशु पर अधिक भार नहीं लादता, अपने कर्मचारियों अथवा आश्रितों की जीविका का विच्छेद नहीं करता। वह आक्रामक नहीं होता। महात्मा गांधी को बहुत हद तक इसी श्रेणी का व्यक्ति कहा जा सकता है।

हिंसा : कारण और निवारण

बहुत बार विवशता में हिंसा फूटती है। यदि संपन्न लोग क्रूरता से मुक्त हों, तो हिंसा का बीज अंकुरित नहीं हो सकता। भूमिहीनों के प्रति जमींदार करुणाशील नहीं है। मेधावी युवक रोजगार के अवसर से वंचित है। न्यायालय से न्याय की आशा क्षीण हो जाती है। राजनीतिज्ञ, पुलिस और अपराधियों का गठबंधन यथार्थ पर पर्दा डाल देता है।

हिंसा कार्य है, कारण नहीं

हम लोग कार्य को मिटाने की बात सोचते हैं, कारण पर ध्यान नहीं देते। हिंसा एक कार्य है, वह कारण नहीं है। उसका कारण है—सामाजिक और आर्थिक विषमता। उसका कारण है—संपन्न वर्ग का विपन्न वर्ग के प्रति क्रूर व्यवहार। उसका कारण है—उच्च वर्ग का विलासिता एवं सुख-सुविधापूर्ण जीवन। उसका कारण है—निम्नवर्ग की उपेक्षा। इन कारणों की समाप्ति हो, तो हिंसा कम हो सकती है। इस सचाई की ओर राज्य, समाजसेवी और धर्म के लोग ध्यान दें। समस्या का समाधान हो सकता है। केवल कानून और व्यवस्था की सीमा में सोचना, सैनिक बलों को नियुक्त करना, पुलिस को अधिक सक्षम बनाना, अत्याधुनिक हथियारों का उपयोग करना—ये सब हिंसा की समस्या से निबटने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इस समस्या के समाधान का मुख्य कारक है—शक्तिशाली वर्ग के हृदय में करुणा का विकास।

अहिंसा की अंतरात्मा है—करुणा

सम्यक् दर्शन की पांच कसौटियां हैं—(1) शम—मानसिक शांति, (2) संवेग—मुमुक्षा, बंधन से मुक्त होने की इच्छा, (3) निर्वेद—अनासक्ति, (4) अनुकंपा—करुणा और (5) आस्तिक्य—अस्तित्वबोध, सत्यनिष्ठा।

इनमें चौथी कसौटी है—करुणा। जब दर्शन मिथ्या हो जाता है, तब क्रूरता पलती है। दर्शन के बदलते ही क्रूरता का स्थान करुणा ले लेती है। 'सब जीव समान हैं'—यह आत्मतुला या आत्मौपम्य की अनुभूति जितनी प्रखर होती है, करुणा भी उतनी ही प्रखर हो जाती है। यही अहिंसा की अंतरात्मा है। अहिंसा का आचरण करुणा पर अवलंबित है। महावीर को कोई व्यक्ति कष्ट देता तो महावीर सोचतें कि यह मुझे निमित्त बना कर अपना अहित कर रहा है। यह सोचते-सोचते उनकी करुणा छलक पड़ती। वे अपना कष्ट भूल जाते।

यह है—करुणा

श्रीमद् राजचंद्र की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने किसी व्यक्ति से हीरों का सौदा किया। फिर हीरों के भाव तेज हो गए। सामने वाले व्यक्ति को हजारों का घाटा हो रहा था। श्रीमद् राजचंद्र ने उस व्यक्ति को बुला कर कहा—'सौदे का रुक्का दो।' घने आग्रह के बाद उसने रुक्का श्रीमद् राजचंद्र के हाथ में दे दिया। उन्होंने उस रुक्के को फाड़ते हुए कहा—'हमारा सौदा रद्द है। राजचंद्र पानी पी सकता है, किसी का खून नहीं पी सकता।'—महात्मा गांधी पर श्रीमद् राजचंद्र की ऐसी अहिंसा का बड़ा प्रभाव था। वे यह कहते भी थे।

यह है करुणा, जो अहिंसा को अभिव्यक्ति देती है।

एक और घटना है। चूरू जिले में बीदासर नाम का कस्बा है। वहां एक श्रावक थे। नाम था—उत्तमचंद बैगानी। वे जयाचार्यश्री के प्रति परम आस्थावान थे। अकस्मात उनका जवान लड़का मर गया। तब किसी ज्योतिषी ने बताया—'आपकी अंगुली में हीरे की अंगूठी है और यह हीरा आपके लिए शुभ नहीं है। आप इसे बेच दें।'

उनके मित्र ने कहा—'यह हीरा मुझे दें, मैं किसी को बेच देता हूं।'

उत्तमचंदजी बोले—'यह लो हीरा। इसे कुएं में डाल आओ।'

मित्र बोला—'इतना कीमती हीरा कुएं में कैसे डालूं? मैं इसे बेच दूंगा।'

उत्तमचंदजी फिर बोले—'इसे बेचना नहीं है। इसे कुएं में ही डाल आओ।'—मित्र ने फिर बेचने का आग्रह किया।

उन्होंने कहा—'मैं किसी दूसरे को पुत्र की मृत्यु से दुखी होता नहीं देखना चाहता।'—यह वह स्वर है, जिसने अहिंसा का रेखांकन किया है, करुणा को जीवंत किया है।

कालसौकरिक राजगृह का प्रसिद्ध कसाई था। वह प्रतिदिन अनेक भैंसों को मारता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सुलस उसका उत्तराधिकारी बना। उत्तराधिकार की रस्म के लिए भी एक भैंसे की हत्या करना जरूरी समझा गया। सुलसकुमार भगवान महावीर का श्रावक था। उसके मन में करुणा की धारा प्रवाहित थी। उसने अपने परिवारजनों से कहा—भैंसा मारना मेरे लिए संभव नहीं है, पर उसकी बात नहीं मानी गई। अत्यंत आग्रह के साथ उसके हाथ में तलवार थमा दी गई। सुलस ने तलवार तो चलाई, पर भैंसे के गले पर नहीं, अपितु अपने पैरों पर। पैरों से लहू की धार बह चली। परिवार के लोगों ने कहा—'यह अपने पिता का योग्य उत्तराधिकारी नहीं बन पाएगा।'

इसी करुणा ने सुलस को अहिंसा के पथ पर प्रतिष्ठित कर दिया।

अहिंसा के दो तटबंध : करुणा और संयम

भगवान महावीर अहिंसा के उद्गाता थे। उनकी अहिंसा के दो तटबंध थे—संयम और करुणा। केवलमात्र करुणा हो तो, कुछ प्रसंगों में वह अहिंसा से दूर चली जाती है। इसलिए करुणा के साथ संयम और संयम के साथ करुणा का योग आवश्यक है। महावीर ने इस योग की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया।

दुख-मोचन के साथ जुड़ी हुई करुणा महावीर को मान्य नहीं थी। दुख के स्रोत असंख्य हैं। उन स्रोतों की पूर्ति ही हिंसा को प्रतिष्ठित करती है। इस खतरे से बचने के लिए ही अहिंसा का स्वरूप निषेध की भाषा में निर्धारित किया गया। न+हिंसा=अहिंसा—यह जितना निर्दोष है, उतना निर्दोष विधायक स्वरूप नहीं बन सकता।

अहिंसा का मौलिक हेतु

करुणा के साथ विवेक आवश्यक है। यदि विवेक होता है—तो एक ओर मनुष्य के शोषण, दूसरी ओर पैसे से धर्म कमाने की वृत्ति पनपती नहीं है। क्रूरता का प्रतिपक्ष करुणा है। करुणापूर्ण व्यवहार स्थूल प्रवृत्ति है और उसका सूक्ष्म रूप है—क्रूरता का विलय। यह दृष्टिकोण के परिवर्तन के द्वारा ही संभव है। अहिंसा का मौलिक हेतु सम्यक् दर्शन है। दर्शन जैसे ही सम्यक् बनता है, वैसे ही क्रूरता का आसन हिल जाता है। करुणा प्रतिष्ठित हो जाती है।

हिंसा : कारणों की खोज

हिंसा एक है और कारण असंख्य है। कर्मवाद में हिंसा का कारण है—पूर्वकृत कर्म का विपाक। विज्ञान की भाषा में हिंसा का कारण है—रसायन। भगवान महावीर ने कारणों का एक वर्गीकरण बतलाया था। आचारांग सूत्र में एक वर्गीकरण मिलता है। उसमें हिंसा के चार कारण बतलाए हैं—(1) वर्तमान जीवन के लिए, (2), प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, (3) जन्म, मरण और मोचन के लिए तथा (4) दुख प्रतिकार के लिए।

दूसरा वर्गीकरण प्रश्नव्याकरण सूत्र का है। उसमें हिंसा के पंद्रह कारण बताए गए हैं। ये हैं—(1) क्रोध, (2) मान, (3) माया, (4) लोभ, (5) हास्य, (6) वैर, (7) रति, (8) अरति, (9) शोक, (10) भोग, (11) अर्थ, (12) कर्म, (13) धर्म, (14) पराधीनता और (15) मोह।

हिंसा के कारण इतने ही नहीं हैं। वे अनेक हैं।

हिंसा के कारणों की खोज अधिकांशतः बाहर से होती है। हिंसा के कारण बाहर नहीं हैं, उसके कारण बाहर भी हैं और भीतर भी हैं। इसलिए हमारी खोज के दो आयाम होंगे—बाहर और भीतर। गरीबी और आर्थिक विषमता हिंसा के कारण हैं, किंतु मुख्य कारण है—मानसिकता। वह आंतरिक कारण है। आंतरिक कारणों की सूची भी लंबी हो सकती है। केवल मानसिकता ही उसका कारण नहीं है।

शरीर के स्तर पर हिंसा के आंतरिक कारण दो हैं—(1) नाड़ीतंत्रीय असंतुलन, (2) रासायनिक असंतुलन। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के स्तर पर भी हिंसा के आंतरिक कारण दो हैं—(1) कर्म विपाक, (2) धुंधला आभामंडल।

चेतना के स्तर पर हिंसा के आंतरिक कारण हैं—(1) मानसिक तनाव, (2) भावनात्मक तनाव, (3) निषेधात्मक दृष्टिकोण, (4) मानसिक चंचलता का अतिरेक, (5) अहं भावना, (6) हीन भावना और (7) वैचारिक आग्रह या मिथ्या दृष्टिकोण।

इसीलिए हिंसा की सत्ता व्यापक है। क्योंकि उसके कारण अनेक हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंसा की जड़ें बहुत गहरी हैं।

अहिंसा की दृष्टि से सोचने वाले विकेंद्रित अर्थव्यवस्था, श्रम, स्वावलंबन की चर्चा करते हैं। अहिंसक समाज-रचना की दिशा में ये अपेक्षित भी हैं, किंतु इतने भर से अहिंसक समाज की रचना हो जाए, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसके लिए सभी कारणों की समीक्षा करना और एक समग्र प्रारूप की आवश्यकता प्रतीत होती है।

अहिंसा : जीवन-दर्शन

अहिंसा को केवल उपयोगिता के आधार पर स्वीकार किया जाएगा तो उसका विकास संभव नहीं है। इसें व्यवहार या प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किए जाने से विकास संभव नहीं है। आस्था, आत्मानुभूति, उपयोगिता और प्रवृत्ति—इस चतुष्पदी के रूप में स्वीकृति ही कारगर हो सकती है। समीक्षा के पश्चात् जो विचार उभर कर आता है, वह जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत होना जरूरी है। आज वह केवल सिद्धांत के रूप में चर्चित है। अहिंसा के अंकुरण के लिए आवश्यक है—समग्र दृष्टि का निर्माण, समग्र क्रांति का आह्वान और जीवन का समग्रता से समर्पण।

प्रश्न अहिंसक समाज-रचना का

अहिंसक समाज-रचना का स्वप्न बहुत मीठा है। महात्मा गांधी के पश्चात् तो ये शब्द और अधिक

मिठास से भर गए हैं। समाज रचना के बदल जाने भर से व्यक्ति नहीं बदलते हैं। आज भी अपराध, हत्या, अन्याय और क्रूरतापूर्ण व्यवहार व्यक्ति करता है। नियंत्रण सामाजिक हो सकता है, किंतु आचरण तो वैयक्तिक ही होता है। नियंत्रण और आचरण—इन दोनों में ऐक्यता हो जाए तो सचमुच नए समाज-रचना की बात सोची जा सकती है।

अहिंसक समाज-रचना की पहली शर्त है—हृदय-परिवर्तन। यह सबसे जटिल समस्या है। कानून और दंड-व्यवस्था को सामूहिक बनाया जा सकता है, पर हृदय-परिवर्तन को सामूहिक नहीं बनाया जा सकता। उसके लिए कोई कानून या दंड-व्यवस्था कारगर नहीं हो सकती। उसका आधार एकमात्र व्यक्ति की अपनी इच्छा है। इस के आधार पर कुछ व्यक्ति बदल सकते हैं, समाज का भी एक भाग बदल सकता है, पर पूरा समाज बदल जाए—यह सोचना सहज नहीं है। इसका कारण है—मानवीय प्रकृति। उसमें बहुत अधिक तरतमता है। महत्त्वाकांक्षा, सत्ता व अधिकार की भूख में कल्पनातीत तरतमता मिलेगी। इस तरतमता की स्थिति में सीमाकरण कैसे हो सकता है?

आसान नहीं है चेतन को बदलना

अचेतन को चाहे जिस सांचे में ढाला जा सकता है, पर चेतन के लिए यह कठिन है। मैत्री और प्रेम में विश्वास करने वाले लोगों की अपेक्षा स्वार्थ और छीना-झपटी में विश्वास करने वाले लोगों की संख्या अधिक है। त्याग के प्रति समर्पित लोग कितने हैं? भौतिकता के प्रति समर्पित लोगों की आज भीड़ है। स्वेच्छा से सीमाकरण करने वाले लोग बहुत कम हैं। अर्थ की अंधी दौड़ में सारा समाज भाग रहा है।

समाज-रचना : अहिंसा का एक प्रयोग

अहिंसा के प्रशिक्षण के द्वारा ही लोगों को बदला जा सकता है। अहिंसा और अपरिग्रह की दिशा में प्रशिक्षण हो, यह चिंतन अनृत नहीं है। इसमें सचाई है। प्रशिक्षण एक प्रक्रिया है, हृदय को बदलने की। किंतु, सब को बदला जा सकता है—इसका दावा कोई नहीं कर सकता। यह यथार्थ है। हम यथार्थ के धरातल पर अपने पैर आगे बढ़ाएं तो निराशा नहीं आएगी। केवल कल्पना के सहारे आगे बढ़ने वाले निराश हो जाते हैं। हमें अहिंसक समाज संरचना का स्वप्न छोड़ना नहीं है, अपितु उसमें यथार्थ का रंग भरना है। समाज-रचना स्वयं अहिंसा का एक प्रयोग है।

समाज की आधारभित्ति

अहिंसा के दो रूप हैं—नैश्चयिक और व्यावहारिक। नैश्चयिक अहिंसा केवल व्यक्ति की अंतश्चेतना से संबंध रखती है। वह नितांत वैयक्तिक होती है। व्यावहारिक अहिंसा की साधना समाज के संदर्भ में होती है। हजारों-हजारों आदमी एक साथ रहें और दूसरों को क्षति न पहुंचाएं—यह व्यावहारिक अहिंसा है। समाज की आधारभित्ति यही है। दूसरों को विपन्न बना कर अपने आपको संपन्न बनाने की मनोवृत्ति से समाज की नींव कमजोर होती है। स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर दवा लेकर स्वास्थ्य को ठीक करना मनुष्य का ही काम है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास जरूरी है। यदि यह क्षमता आ जाए तो समाज स्वस्थ बन जाएगा। अहिंसक समाज की रचना यही है।

प्रयत्न और पुरुषार्थ सफलता की कुंजी है, उसी पर मनुष्य का अधिकार है। वह अपने अधिकार को विस्मृत नहीं करे, तभी मानवता चिरंजीवी होगी, तभी अहिंसक समाज-रचना का स्वप्न साकार होगा। ❖

खुद से भी उलझा तो होगा
वो तन्हा होता तो होगा

मुझ से लड़ कर जाने वाला
अब खुद से लड़ता तो होगा

तन्हा पा कर फिर यादों ने
उस को भी घेरा तो होगा

—शीन काफ निजाम

भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार मनुष्य का भूत, वर्तमान और भविष्य का सूक्ष्म आकार हर समय वायुमंडल में विद्यमान रहता है। जब व्यक्ति निद्रावस्था में होता है, तो उसका व्यक्तित्व भी सूक्ष्माकार होकर अपने भूत, भविष्य से संपर्क स्थापित करता है। यही संपर्क स्वप्न का कारण और स्वप्न का माध्यम बनता है। योग में बताया है कि मानव की पांच ज्ञानेंद्रियों के अलावा एक ऐसा गुप्त मार्ग भी है, जिससे स्वप्न-शक्ति शरीर में प्रवेश करती है तथा मस्तिष्क से टकराती है। यह शक्ति मूल रूप से भविष्य-सूचक है और भविष्य संबंधी घटनाओं का बोध कराती है।

स्वप्न : कारण और बोध

साध्वी डॉ. ललितरेखा (खाटू)

जो मनुष्य स्वप्न नहीं देखता, वह जीवित कैसे रह सकता है? इसका अभिप्राय यह है कि जीवित अथवा सक्रिय वही है—जो स्वप्न देखता है। स्वप्नरहित निद्रा किसी की भी नहीं होती। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार शेक्सपियर ने कहा है—'हमारा निर्माण ही स्वप्नों से हुआ है।' उन्होंने यहां तक कहा है कि—स्वप्न ऐसी खुराक कि जैसे हम उसी के लिए बने हैं—Dreams are such stuff as we are made of.

रॉबर्ट स्टीव का तो यहां तक मानना है कि जीवित रहने के लिए स्वप्न अनिवार्य हैं। स्वप्नों की ग्रहणशीलता हमारे जीवन को सुखद बनाने में बेहतर सहायक सिद्ध हो सकती है। स्वप्नों के संसार में मनुष्य क्रीड़ाएं करता है। एक जगह बैठने की अपेक्षा भ्रमण ज्यादा करता है। चौंतीस प्रतिशत स्वप्न भ्रमण एवं सवारी करने से संबंधित होते हैं। ग्यारह प्रतिशत दृश्यों में किसी से बतियाते हैं। सात प्रतिशत स्वप्न-दृश्यों में हम बैठे रहते हैं। छह प्रतिशत स्वप्न सामाजिक समारोहों से संबंधित होते हैं। पांच प्रतिशत स्वप्न में हम खेलते-कूदते हैं। तीन प्रतिशत में शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य करते हैं और तीन प्रतिशत स्वप्न में हम लड़ते-झगड़ते भी हैं। चौबीस प्रतिशत स्वप्नों को भोजन आदि बाकी कार्यों से जोड़ा जा सकता है।

मनुष्य जन्म से ही स्वप्न-दृष्टा माना गया है। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य लोकोक्ति है कि—जो मनुष्य स्वप्न नहीं लेता, जीवित भी नहीं रहता—A man who does not dream does not live.

मानसिक समस्याओं के समाधान में भी स्वप्नों का विशेष महत्त्व है। हमारे दैनिक जीवन की जो भावनात्मक समस्याएं होती हैं, स्वप्न उनके लिए रात्रिकालीन उपचार का काम करते हैं। इवांस कहते हैं—स्वप्न निद्रा में बाधा पहुंचाने पर उत्पन्न होने वाली विलक्षण कल्पनाओं के उद्देश्यहीन जोड़-तोड़ नहीं होते, बल्कि वे ऐसे कार्य संपादित करते हैं—जिन पर हमारे मानसिक जीवन का अस्तित्व निर्भर करता है। जब व्यक्ति मनःस्ताप से श्रांत-क्लांत हो जाता है, तब अवचेतन का विशाल वटवृक्ष उसे अपनी शीतल छांव तले थपकियां देकर सुला देता है। मस्तिष्क पर लगने वाले बौद्धिक संवेदनात्मक आघातों के लिए गहन निद्रा और सुनहरी स्वप्न-शृंखलाएं मरहम का काम करती हैं, क्योंकि स्वप्नों में अवचेतन क्रियाशील

होकर चेतन को विश्राम का मौका देता है। अतः स्वप्न ही वह राजपथ है, जिस पर चल कर मानव स्वयं को समग्र बना सकता है, मस्तिष्क को चेतना के पोषण द्वारा संजीवनी-शक्ति प्रदान कर व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है।

भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार मनुष्य का भूत, वर्तमान और भविष्य का सूक्ष्म आकार हर समय वायुमंडल में विद्यमान रहता है। जब व्यक्ति निद्रावस्था में होता है, तो उसका व्यक्तित्व भी सूक्ष्माकार होकर अपने भूत, भविष्य से संपर्क स्थापित करता है। यही संपर्क स्वप्न का कारण और स्वप्न का माध्यम बनता है। योग में बताया है कि—मानव की पांच ज्ञानेंद्रियों के अलावा एक ऐसा गुप्त मार्ग भी है, जिससे स्वप्न-शक्ति शरीर में प्रवेश करती है तथा मस्तिष्क से टकराती है। यह शक्ति मूल रूप से भविष्य-सूचक है और भविष्य संबंधी घटनाओं का बोध कराती है।

हमारे ऋषि-मुनियों के अनुसार स्वप्नों का आना ईश्वरीय शक्ति का वरदान है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार हर व्यक्ति को अपने कर्मानुसार, संस्कारानुसार, मान्य धर्मानुसार, पूर्वजन्मानुसार ही स्वप्न दिखाई देते हैं। जिस व्यक्ति से जो करवाना होता है, उसी के अनुरूप स्वप्न संकेत देता है। इस प्रक्रिया में परमेश्वर की इच्छा सर्वोपरि है।

स्वप्न देखे नहीं जाते, दिखाए जाते हैं। भविष्य-पुराण के अनुसार स्वप्न प्रतीक रूप में ही आते हैं, प्रत्यक्ष नहीं। स्वप्न एक के पश्चात् एक आने वाले मानसिक चित्रों की माला है। उनकी समानता मानस-पटल पर अंकित सूक्ष्म दृश्यों से हो सकती है। स्वप्नों को मुख्यतया तीन वर्गों में बांट सकते हैं—1. शारीरिक दशाओं से प्रभावित स्वप्न, 2. मानसिक स्थिति के प्रतिक्रिया स्वरूप स्वप्न और 3. आध्यात्मिक स्वप्न।

जैन दर्शन के अनुसार नींद का आंतरिक कारण दर्शनावरणीय कर्म का परिपाक है। जबकि बाह्य कारण-परिश्रम, थकान, अति भोजन, गरिष्ठ भोजन, अनुकूल स्थान, एकांत वातावरण, स्वापक रसायन और औषधियां हैं। जैन आगमों में उल्लेख है कि अधिक जागने से अजीर्ण रोग हो जाता है, क्योंकि पर्याप्त नींद के अभाव में हमारा पाचन-तंत्र गड़बड़ा जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार स्वप्न मोह-कर्म और पूर्व संस्कार के उद्‌बोध के परिणाम हैं। विशेषावश्यक भाष्य में बताया गया है कि स्वप्न संस्कारों के कारण आते हैं। स्वप्न दर्शन के नौ निमित्त कारण माने गए हैं—1. अनुभूत, 2. दृष्ट, 3. चिंतित, 4. श्रुत, 5. प्रकृति विकार, 6. देवता, 7. अनूप, 8. पुण्य, 9. पाप।

भगवान महावीर ने स्वप्नों के पांच भेद बताएं हैं—1. यथातथ्य, 2. चिंता-स्वप्न, 3. प्रतान-स्वप्न, 4. तद्‌विपरीत, 5. अव्यक्त दर्शन।

बौद्ध दर्शन में भी स्वप्न की व्याख्या करने वाले सिद्धांत पाए जाते हैं। इनमें मुख्यतः—1. शरीर शास्त्रीय सिद्धांत, 2. ज्ञानवाहक नाड़ी सिद्धांत, 3. चैत्य सिद्धांत और 4. द्रष्टा स्वप्न हैं।

वैदिक-दर्शन के अनुसार (महाभारत—शांतिपर्व) स्वप्न आने के कारण हैं—जागृतावस्था में निरंतर शब्दादिक विषयों को ग्रहण करते-करते श्रोतादि इंद्रियां जब थक जाती हैं, तब सभी प्राणियों के अनुभव में आने वाला स्वप्न दिखाई देने लगता है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन में चार प्रकार के स्वप्न माने गए हैं—1. धातुदोष स्वप्न, 2. संस्कार पाठव स्वप्न, 3. अदृष्ट धर्माधर्म स्वप्न, 4. स्वप्नांतिक ज्ञान।

योगसूत्र में स्वप्नों के तीन प्रकार बताए गए हैं—1. तमोगुणी स्वप्न, 2. रजोगुणी स्वप्न, 3. सात्त्विक स्वप्न।

ज्योतिष के अनुसार स्वप्न चार प्रकार के कहे गए हैं—1. दैविक स्वप्न, 2 शुभ स्वप्न, 3. अशुभ स्वप्न, 4. मिश्र स्वप्न।

आयुर्वेद में निद्रा की व्याख्या इस प्रकार की गई है—मन और शरीर के थक जाने पर जब इंद्रियां शिथिल होकर अपना कर्म रोक देती हैं, तो व्यक्ति सो जाता है। आयुर्वेद में निद्रा के सात प्रकार बताए गए हैं—1. तमोभवा निद्रा, 2. श्लेष्म समुद्‌भवा निद्रा, 3. मनःशरीर संभवा निद्रा, 4. आगंतुकी निद्रा, 5. व्याध्यनुवर्तिनी निद्रा, 6. रात्रिस्वभावप्रभवा निद्रा। निद्रा का सेवन जब

उचित समय पर किया जाता है, तो वह निद्रा शरीर को आयु और सुख से युक्त करती है। यथोचित काल में स्वाभाविक निद्रा का सेवन करने से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य के साथ दीर्घायु भी प्राप्त होती है। आयुर्वेद के अनुसार मनोवह—अर्थात् मन में बहने वाली नाड़ियों के छिद्र जिस समय तीनों दोषों से पूर्ण हो जाते हैं, उस समय में मनुष्य दारुण और अदारुण स्वप्नों को देखता है।

इस्लाम कहता है कि—स्वप्न मस्तिष्क-शक्ति की उपज है।

मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड स्वप्न-विश्लेषण के जनक माने जाते हैं। वे मानते हैं कि सभी स्वप्न काम-चेतना (Sex) से प्रभावित होकर दिखाई देते हैं। 'सेक्स' भावना का आधार मान कर उन्होंने स्वप्नों के प्रतीकों को प्रस्तुत किया है।

हमारा मन तीन भागों में बंटा हुआ है—चेतन मन, अवचेतन मन, अचेतन मन। निद्रा काल में हमारा चेतन मन सुप्त हो जाता है और अवचेतन मन सक्रिय हो जाता है। उस अवस्था में हम स्वप्न देखते हैं। निद्रा-काल में भी मानसिक क्रिया निरंतर चलती रहती है। लगातार चलने वाली इन्हीं मानसिक प्रक्रियाओं की एक अवस्थाविशेष है—स्वप्न।

हमारे मस्तिष्क में 'हाइपोथेलेमस' एक स्वतः चालित यंत्र है, जो शरीर के तापमान को नियंत्रित करता है। निद्रा का केंद्र भी यही है। इसकी रासायनिक प्रक्रिया से नींद आती है। नींद की चार अवस्थाएं होती हैं। चतुर्थ अवस्था में शरीर 'रेपिड आई मोशन' में होता है। इस अवस्था में ही सपने आते हैं। याददाश्त को बेहतर करने के लिए अच्छी नींद आवश्यक है। 'लिंबिक सिस्टम' में 'हिप्पोकैंपस' अंतर्निहित होता है। यह सोने, सपने देखने एवं सुनिश्चित कला सीखने में उपयोगी है। तनावों से मुक्ति दिलाने हेतु अवचेतन मन स्वप्न दिखाता है।

मनुष्य के अंदर एक अविज्ञात चेतना शक्ति काम करती है, जो सुदूर क्षेत्र तक संपर्क बनाए हुए है। यही शक्ति अनुभव संपर्क बनाए हुए है। यही शक्ति अनुभव और ज्ञान का उचित अवसरों पर रहस्योद्घाटन करती है। आदिमानव की धारणा थी कि मनुष्य के दो आत्माएं होती हैं। एक आत्मा मनुष्य के मरने के साथ ही मर जाती है, दूसरी मृत्यु के उपरांत उसे छोड़ कर चली जाती है। यह दूसरी आत्मा ही रात्रि में विचरण करती है और स्वप्न सामग्री जुटाती है।

नींद की अवस्था में व्यक्ति को बाहरी उद्दीपकों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। जैसे—सर्दी-गर्मी, रोशनी आदि। 'अल्कोहल', नींद की गोलियां और शामक द्रव्य स्वप्न क्रिया में बाधा पहुंचा कर इस प्रक्रिया को कुंठित करते हैं।

बच्चों में दुखद स्वप्न का प्रभाव उनके व्यक्तित्व-विकास पर बहुत बुरा पड़ता है। दुःस्वप्नों का लोगों के व्यक्तिगत चरित्र से घनिष्ठ संबंध है। भोजन का भी स्वप्नों पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। दुःस्वप्नों का कारण परिस्थितियां, कोलाहल, शारीरिक कष्ट, मनोविकार एवं मस्तिष्कीय असंतुलन आदि हैं। जीवन में तनाव के दौरान दुःस्वप्न अधिक आते हैं। इसलिए जीवन यथासंभव शांति के साथ बिताना चाहिए।

जैन मान्यता के अनुसार स्वप्न का फल होना, न होना व्यक्ति के प्रारब्ध पर निर्भर करता है। भारतीय दर्शन में जैसा कर्म, वैसा फल सिद्धांत की मान्यता है। स्वप्न भी कर्मानुसार ही आते हैं। जब व्यक्ति के पुण्य कर्म का उदय होता है, तो उसे शुभ स्वप्न आते हैं और पाप कर्म के उदय से अशुभ स्वप्न आते हैं। 'श्री भिक्षु आगम विषय कोश' के अनुसार पुण्य कर्म और पाप कर्म इष्ट और अनिष्ट स्वप्न के निमित्त बनते हैं। इसमें अनेकांतवाद के आधार पर स्वप्नों की मीमांसा की गई है। कुछ स्वप्न शुभ होते हैं और कुछ स्वप्न अशुभ। शुभ स्वप्नों से समाधि मिलती है और अशुभ स्वप्नों से असमाधि-अशांति मिलती है।

तीस स्वप्न उत्तम महाफल देने वाले माने गए हैं। भगवान महावीर ने कहा—'गौतम! बयालीस स्वप्न अशुभ हैं'—सारे स्वप्न बहत्तर है। कुछ स्वप्न स्वविपाकी होते हैं, अर्थात् उसका फल दृष्टा को ही मिलता है। कुछ स्वप्न परविपाकी होते हैं, अर्थात् उनका फल दूसरों को मिलता है। जैसे—राजा भरत, राजा चंद्रगुप्त के स्वप्न। कुछ स्वप्न न स्वविपाकी होते हैं और न ही परविपाकी होते हैं। अर्थात्, निरर्थक होते हैं। कुछ स्वप्न स्वविपाकी

और परविपाकी, दोनों होते हैं। जैसे भगवान महावीर एवं भगवान बुद्ध के स्वप्नों के फल उनको और जनता—दोनों को ही मिले। कुछ-कुछ स्वप्न के फल व्यवहार में निश्चित फल की अवधारणा के विपरीत भी होते हैं। जैसे; श्रीमती गोपा के स्वप्नों का फल। कभी-कभी कुछ-कुछ स्वप्नों का फल निश्चित समय के विपरीत हजारों वर्षों के बाद भी मिलते हैं। जैसे; राजा भरत के स्वप्नों का फल पंचम काल की जनता को मिल रहा है।

मनोवैज्ञानिक सपनों के अंतर का कारण व्यक्ति की सोच, प्रकृति और उसके विचारों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को मानते हैं। हमारी मनोदशा ही सपनों से प्रभावित नहीं होती, बल्कि मनोदशा का प्रभाव भी स्वप्नों पर पड़ता है। किसी भी सदमे का हमारे सपनों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, लेकिन इसके प्रभाव में आयु, लिंग एवं परिस्थितियां महत्त्वपूर्ण हैं। जिसकी जैसी भावना, उसके वैसे ही मानस-चित्र और वैसे ही स्वप्न।

स्वप्न निद्रा के रक्षक होते हैं। यदि स्वप्न न होंगे, तो स्वप्न की कारणभूत उत्तेजना निद्रा को समाप्त कर देने वाली हो जाएगी। वस्तुतः स्वप्न ही निद्रा को कायम रख पाने में सहायक होते हैं। स्वप्न न हो, तो नींद का बने रहना ही असंभव हो जाए। इसका परिणाम यह होगा कि व्यक्ति की नींद टूटने की बजाय और लंबी हो जाएगी। फ्रायड ने स्वप्न को नींद का संरक्षक, अभिभावक माना है।

अध्यात्म विद्या का विशिष्ट अंग स्वप्न विद्या है। उसका विस्तार करके परोक्ष जगत के रहस्य को जाना जा सकता है। अतींद्रिय शक्तियों का विकास, स्फुरण एवं स्पंदन को स्वप्न से जाना जा सकता है। इसके माध्यम से संभावित खतरों का पूर्वाभास या आकलन भी किया जा सकता है। रूसी स्वप्नशास्त्री डॉ. कसात्किन ने विभिन्न शोधों के बाद निष्कर्ष निकाला कि शरीर में होने वाली सूक्ष्मतम क्रियाओं को भी समझने का सामर्थ्य हमारे मस्तिष्क में है। परिवेश और परिस्थितियों की सूक्ष्मता से छानबीन कर वह हमें अनेक दुर्घटनाओं एवं दुखों के पूर्वाभास भी कराता है। कई स्वप्न हमें परामर्श प्रदान करते हैं, तो कई स्वप्न हमारा उपयुक्त मार्गदर्शन भी करते हैं। स्वप्नों के समुचित उपयोग से मानव मन की दुखद ग्रंथियों और कुंठाओं की चिकित्सा भी की जा सकती है। स्वप्न से जटिलतम समस्याओं का समाधान भी संभव है। स्वप्न-विज्ञान के आधार पर वही लाभ उठाया जा सकता है, जो स्वास्थ्य विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान के आधार पर उठाया जाता है।

कुछ स्वप्न प्रेरक होते हैं और उनके कारण व्यक्ति के जीवन की दिशा ही परिवर्तित हो जाती है। कभी-कभी स्वप्नों से अनुत्तरित प्रश्न उत्तरित भी हो जाते हैं। असमाहित मन स्वतः समाहित हो जाता है। जीवन की जटिल समस्याओं का समीकरण अपने-आप हल हो जाता है। भावनात्मक एवं बौद्धिक समस्याएं अपने-आप समाहित हो जाती हैं।

जो व्यक्ति स्थिर चित्त, जितेंद्रिय, शांतमुद्रा, धर्मभाव में रुचि रखने वाला, धर्मानुरागी, प्रामाणिक, सत्यवादी, दयालु, श्रद्धालु और उत्तम गुणों से समृद्ध है—उसे जो स्वप्न आता है, वह सार्थक होता है। जिसके मन; वाणी और अध्यवसाय पवित्र हैं, जो संवृत आत्मा हैं—प्रायः उनके द्वारा देखा गया स्वप्न सफल माना जाता है, तथापि अच्छा या बुरा फल तो कर्मानुसार यथासमय प्राप्त होता है। आधि-व्याधि जन्य, मल-मूत्रादि बाधा जन्य, बीमार, शोक, चिंता और कामग्रस्त व्यक्ति द्वारा देखा गया स्वप्न निरर्थक होता है। दुश्चिंता, अनिद्रा, मानसिक मलिनता, आसक्ति, अस्वस्थता आदि को स्वप्न की अयथार्थता का हेतु माना गया है।

स्वप्न-फल का कालमान भिन्न-भिन्न है। रात्रि के प्रथम प्रहर का देखा हुआ स्वप्न एक वर्ष में फल देता है। दूसरे प्रहर का स्वप्न छह और आठ माह में फल देता है। तृतीय प्रहर का तीन माह में, चतुर्थ प्रहर का एक माह में, दो घटिका दिन शेष रहे—तब स्वप्न आए तो उसका फल दस दिन में और सूर्योदय के समय का स्वप्न तत्काल फल देता है। हारीत संहिता के अनुसार दोपहर या दिन के स्वप्न छह माह में फल देते हैं तथा स्वप्न ज्योतिष और शकुन विचार के अनुसार सायंकाल के स्वप्न एक वर्ष में फल देते हैं।

अशुभ स्वप्न देख कर जो पुनः उसी रात सौम्य और शुभ स्वप्न को देखता है, उसका फल उत्तम ही होता है। भगवान महावीर ने कहा है—संवृत जीव जो स्वप्न देखता

है, वह यथातथ्य (सार्थक) देखता है। असंवृत जीव जो स्वप्न देखता है, वह सत्य (तथ्य) भी हो सकता है और असत्य भी हो सकता है। देवता के प्रभाव से उत्पन्न होने वाला स्वप्न, धर्म क्रिया के प्रभाव से उत्पन्न होने वाला स्वप्न, पाप के प्रभाव से उत्पन्न होने वाला स्वप्न सत्य होता है। इसका शुभाशुभ फल अवश्य मिलता है।

अशुभ स्वप्न के दिखलाई पड़ने पर णमोकार मंत्र, चार लोगस्स का ध्यान एवं इष्ट का जप करना चाहिए, ताकि चेतना पुनः निर्मलता की ओर गतिशील हो जाए। निद्रा से पूर्व शुभ विचारों के चिंतन, रमण, मनन एवं शुभ संकल्प संजोने से ही शुभ तसवीरें हमारे अंतर्मन की चौखट में 'फिट' होती हैं। यदि उत्तेजनाओं में कमी हो जाए, तो स्वप्नों में भी कमी हो सकती है।

एक मन को जीता कि चार कषायों पर विजय पा ली और इन पांचों को जीतने से पांच इंद्रियां भी विजित हो गईं। इस प्रक्रिया से क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। कर्मशास्त्रीय भाषा में मोह विलय की साधना के द्वारा स्वप्नों पर विजय संभव है। जो मन को जीतना नहीं जानता, वह कषायों और इंद्रियों पर विजय नहीं पा सकता। जो कषायों और इंद्रियों को नहीं जीतता, वह स्वप्न को नहीं जीत सकता। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-कविता
भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति रचनाकार
पहले से ही अपने पास रखें

मंत्र-साधक के पास मुख्यतः तीन शक्तियां होती हैं—आत्मशक्ति, मंत्रशक्ति, इष्टशक्ति। इससे भी आगे तीन शक्तियां विशेष काम करती हैं—संकल्प की शक्ति, एकाग्रता की शक्ति, निरंतरता की शक्ति। मंत्र साधना भौतिक सिद्धि के लिए नहीं, अपितु आत्मोन्नयन तथा चेतना के ऊर्ध्वारोहण की दृष्टि से करनी चाहिए। मंत्र-जप साधपूर्ति के लिए किया जाता है, तो साधनापूर्ति के लिए भी किया जाता है।

मंत्र : उभयलोक व अलौकिक सुख का दाता

❋ साध्वी जगवत्सला

अध्यात्म के आचार्यों ने शांति, शुद्धि और शक्ति जागरण के लिए मंत्र साधना को अत्यधिक उपादेय बताया है। उनके अनुसार मंत्र वह होता है—जो मन को शांत करे, त्राण दे। मंत्र का एक अर्थ है—शब्दों का वह प्रयोग, जो शक्तिशाली प्रकंपन पैदा करे। मंत्र शब्द 'मन्' और 'त्र' इन दो शब्दों के योग से व्युत्पन्न है। मन-मनन, त्र-रक्षा—इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसा मनन जो रक्षित है। मंत्र द्वारा किया गया मनन सदा सुरक्षित रहता है।

मंत्र न तो प्रार्थना है, न आत्मनिवेदन का माध्यम है। मंत्र शब्दों से बनते हैं और शब्द अक्षरों से या वर्गों से। प्रत्येक वर्ग एक विशिष्ट देवता को समर्पित है। वर्णमाला के मूलाक्षर औपचारिक नहीं हैं, उसका प्रत्येक अक्षर मनुष्य के शरीर पर वर्णोच्चार प्रमाण, विशिष्ट प्रभाव डालता है। वर्णमाला का प्रत्येक विभाग पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का अनुसरण करता है। ध्वन्यात्मक मंत्रों का कोई अर्थ नहीं होता। वे केवल अपनी ध्वनि से पूरे शरीर और वातावरण में समाहित होकर एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न करते हैं। उन्हें बीजमंत्र कहा जाता है। जैसे—ऊँ, ऐं, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, अं, कं, चं आदि। व्यंजन एवं स्वर के संयोग से बने शब्द से मंत्र का निर्माण होता है, उन्हें बीजमंत्र कहते हैं।

मंत्र का प्रमुख कार्य है—शरीर के—'इलेक्ट्रो-डायनेमिक फील्ड; विद्युत चुंबकीय क्षेत्र—आभामंडल को शुद्ध करना। इससे मनुष्य का भावना तंत्र प्रभावित होता है। जो आवेग, संवेग का उद्‌गम स्रोत है। शरीर के नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र के स्राव इससे संतुलित होते हैं, जो व्यक्ति के आचार और व्यवहार के नियामक हैं। पश्चिम में विकसित 'साउंड इलेक्ट्रोनिक्स' के आधार पर मंत्र-विज्ञान का आध्यात्मिक मूल्य निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। मंत्र का एक विज्ञान है। मंत्र हमारी आंतरिक शक्तियों को जागृत करता है।

मंत्र तीन प्रकार के होते हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। **स्त्री मंत्र**—वे हैं, जिनके अंत में दो ठः 'स्वाहा' लगते हों। **पुरुष मंत्र**—वे हैं, जिनके अंत में 'हुम्' और 'फट्' हैं। **नपुंसक मंत्र**—वे हैं, जिनके अंत में 'नमः' लगा होता है।

सभी मंत्रों के देवता पुरुष हैं और सभी विद्याओं की स्त्री देवता मानी गई है।

मंत्र में शब्द, अर्थ, उच्चारण और भावना होती है। मंत्र-शक्ति के चार अवयव हैं और लाभ के लिए ये चारों बातें जरूरी हैं—श्रद्धा, सम्यक् उच्चारण, अर्थ का बोध और शब्दों का सम्यक् चयन। मंत्र को शक्तिशाली बनाने

के लिए, पूर्ण प्रभावशाली बनाने के लिए चारों बिंदु—रंग, शब्द, उच्चारण और मन का योग आवश्यक हैं।

मंत्र-शक्ति शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करती है। मंत्रों को शक्तिशाली बनाने में उसकी आवृत्तियों का प्रमुख स्थान है। मंत्रसिद्धि के लिए आकृतियों का जो निर्धारण है, उसे वैज्ञानिक दृष्टि से देखें—तो पत्थर के छोटे से ढेले को डोर से बांध कर यदि तेज गति से घुमाते हुए, छोड़ा जाए—तो वह तीर की भांति बेधक बन जाता है। मंत्रोच्चार की आवृत्तियों से उठने वाली ध्वनि-तरंगों का एक गति-चक्र निर्मित हो जाता है। जिसके तीव्र बहाव से भावना का, वायुमंडल का प्रदूषण बह जाता है। विघ्न-बाधाओं की दीवारें भी ढह पड़ती हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार मंत्र के तीन तत्त्व हैं—शब्द, संकल्प और साधना। मंत्र का प्रथम तत्त्व है—शब्द। शब्द मन के भावों को व्यक्त करता है। मन के भाव शब्द के वाहन पर चढ़ कर यात्रा करते हैं। मंत्र में शब्द होता है। शब्द प्राण-विकास का बहुत बड़ा साधन है। शब्द की तरंगें हमें बहुत प्रभावित करती हैं। शब्द और रंग की तरंग—दोनों ही प्रकाश की तरंगें हैं। उच्चारण के साथ-साथ तरंग भी पैदा होती है। एक शब्द का उच्चारण 'अल्फा' और एक शब्द का उच्चारण 'थेटा' तरंगें पैदा करता है और एक 'बीटा' तरंगें। 'ॐ' का उच्चारण 'अल्फा' तरंग उत्पन्न करता है और मस्तिष्क शिथिल हो जाता है। जितने भी बीजमंत्र हैं, उनमें भिन्न तरंगें उत्पन्न होती हैं और मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। शब्द का उच्चारण छह प्रकार से होता है—ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, परमसूक्ष्म।

शब्दों में शक्ति होती है। वे प्रभावित करते हैं। यह स्थूल प्रभाव की बात है। शब्द का बहुत सूक्ष्म प्रभाव भी होता है। मंत्रविद आचार्यों ने बताया है कि शब्द का ह्रस्व उच्चारण पाप का नाश करता है। दीर्घ उच्चारण लक्ष्मी की वृद्धि करता है, स्त्री की प्राप्ति करता है और प्लुत उच्चारण ज्ञान की वृद्धि करता है। तीन उच्चारण और हैं—सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, परमसूक्ष्म। ये समापत्ति करते हैं, ध्येय के साथ व्यक्ति को जोड़ देते हैं, ध्येय के साथ व्यक्ति का योग कर देते हैं। संकल्प और साधना के बीच साधक एकरस हो जाता है। इसमें संकल्प की जरूरत होती है। संकल्प का ही प्रभाव है कि अहंता में अर्हता जग जाती है। कभी जो डाकू था, वह साधु बन जाता है।

एक अन्य तत्त्व है—साधना। साधना का अर्थ है—अपनी प्राण विद्युत को जान कर उसका सही उपयोग करना। आवश्यकता है कि हमारी विद्युतधारा ऊर्ध्वगामी बने। हृदय, कंठ, नाक, नयन, कान, भृकुटि, ललाट का मध्य भाग, सिर का मध्य भाग—इन स्थानों में विद्युतगति होने से सारी वृत्तियां बदल जाती हैं। मनुष्य महान बनता है, बड़ा बनता है, परोपकारी बनता है, सदाचारी बनता है और परमार्थवर्ती बनता है। शक्ति संपन्न और भक्ति संपन्न बनता है। श्रुत संपन्न, शीलसंपन्न बनता है। प्राण की ऊर्ध्वगति लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम है। मंत्र साधना का अपना महत्त्व है।

मंत्र-साधक के पास मुख्यतः तीन शक्तियां होती हैं—आत्मशक्ति, मंत्रशक्ति, इष्टशक्ति। इससे भी आगे तीन शक्तियां विशेष काम करती हैं—संकल्प की शक्ति, एकाग्रता की शक्ति, निरंतरता की शक्ति। मंत्र साधना भौतिक सिद्धि के लिए नहीं, अपितु आत्मोन्नयन तथा चेतना के ऊर्ध्वारोहण की दृष्टि से करनी चाहिए। मंत्र-जप साधपूर्ति के लिए किया जाता है, तो साधनापूर्ति के लिए भी किया जाता है।

मंत्र अनेक प्रकार के होते हैं। सिद्ध मंत्र, साध्य मंत्र, पिंड मंत्र, बीजमंत्र, कर्त्तरी मंत्र, माला मंत्र, मारक मंत्र, उच्चारक मंत्र, सात्त्विक मंत्र, राजसिक मंत्र, तामसिक मंत्र। और भी अनेकों मंत्र हैं। एक अक्षर वाला पिंड मंत्र, दो अक्षरों वाला कर्त्तरी मंत्र, तीन से नौ वर्ण तक के अक्षरों वाला बीजमंत्र। इससे अधिक वर्ण जिसमें हों—वह माला मंत्र व सिद्ध मंत्र कहलाते हैं। शेष मंत्रों को इनके नामों से ही जाना जा सकता है। मनुस्मृति में लिखा गया है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशाभिः गुणो उपांशु।
स्याच्छत गुणे सहस्रो मनसः स्मृतः।।

मंत्र-जप के विविध प्रकारों में प्रधानतया तीन प्रकार का उल्लेख होता है—1. **वाचिक जप**—शब्दोच्चार से किया जाने वाला जप। एक लिखित मंत्र तभी भाष्य बनता

है, जब हम उसका उच्चारण करते हैं। 2. **उपांशु जप**—जिसमें मात्र ओष्ठ ही हिलते हैं। वाचिक मंत्र उपांशु तभी बनता है, जब उसका हम उच्चारण नहीं करते। 3. **मानस जप**—जब मंत्र मन में उतरता है, तो वह जप मानसिक ही होता है। हमारी सांस की धारा के साथ यह जप एकाकार होने लगता है और भीतर के शून्य में साकार होने लगता है। तब तीसरा चरण घटित होता है। यही चरण मानस जप है। चित्त के ऊपर की परतें मन कहलाती हैं। जब हम मन से मुक्त होकर, मन की अतल गहराइयों को छू लेते हैं—तो वही मन मानस हो जाता है। मंत्र का सबसे गहरा तल मानस है। मानस की स्थिति, वह स्थिति है—जहां सारे अभ्यास छूट जाते हैं। उच्चारण मिट जाता है। भाषा बिखर जाती है। शब्द शून्य हो जाते हैं। तब हमारे हृदय की हर धड़कन के साथ मंत्र एकाकार हो जाता है। शरीर की नस-नस में वह विस्तार ले लेता है। वाचिक जप से सौ गुणा लाभ उपांशु जप में है और उपांशु से सहस्र गुणा अधिक लाभ मानस जप में होता है।

अक्षर और पद को विधिपूर्वक स्पष्ट बोलते हुए मंत्र का उच्चारण किया जाता है, उसे **वाचिक जप** कहते हैं। यह जप संपूर्ण यज्ञों का फल देने वाला होता है। मंद स्वर में मंत्र का उच्चारण करते हुए एक पद से दूसरे पद का विभाग करते जाना **उपांशु जप** कहलाता है। वह पहले की अपेक्षा दोगुना महत्त्व रखता है। अक्षरों की श्रेणी का चिंतन मन ही मन करते हुए, जो उसके अर्थ पर विचार होता है—वह **मानस जप** है। मानस जप योग-सिद्धि देने वाला होता है। जैसा कि कहा गया है—

धिया यदक्षरश्रेण्यां तत्तदर्थ विचारणम्।
स जपो मानसः प्रोक्तो योगसिद्धि प्रदायकः।।

जप से स्तुति करने वाले पुरुष पर इष्टदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। इसीलिए स्वाध्याय-पारायण मनुष्य संपूर्ण मनोरथों को पा सकता है।

डॉ. लेसर लसारियो के अनुसार—उच्छ्वास के साथ शब्दों के उच्चारण से उत्पन्न प्रकंपनों से आंतरिक अवयवों का व्यायाम हो जाता है। प्रकंपन भीतर की गहराई तक पहुंचते हैं, इससे ऊतकों व अवयवों में रक्त संचार निर्बाध बनता है। उनमें प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति होने से प्राण-शक्ति प्रदीप्त होती है। शब्द प्रकंपनों का हमारी अंतःस्रावी ग्रंथियों पर भी प्रभाव पड़ता है। इससे भावधारा, चिंतन एवं आचरण प्रभावित किए जा सकते हैं। ध्वनि प्रकंपनों के प्रभाव से अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिकाओं में एक सुदृढ़ता स्थापित की जा सकती है।

मंत्र आराधना की अनेक निष्पत्तियां हैं—जो आंतरिक भी हैं और बाह्य भी हैं, मानसिक भी हैं और शारीरिक भी हैं। मंत्र की आराधना से तेजस् शरीर सक्रिय हो जाता है। जब तक तेजस् शरीर तक मंत्र नहीं पहुंचता, तब तक मंत्र सफल नहीं होता। जब तेजस् शरीर तक मंत्र पहुंच जाता है, तब वहां की शक्ति बढ़ जाती है। फिर वहां से जो प्राणधारा निकलती है, उससे ही मंत्र शक्तिशाली बनता है। इस स्थिति में शरीर, मन और संकल्प की शक्ति बढ़ जाती है। मंत्र की साधना का बहुत बड़ा परिणाम, उपलब्धि या निष्पत्ति है—संकल्प शक्ति का विकास। मंत्र की सफलता का सूत्र है—शब्द को आगे पहुंचाते-पहुंचाते, स्थूल शरीर की सीमाओं को पार कर तेजस् शरीर की सीमा में पहुंच जाना।

इसीलिए मंत्र की शक्ति का प्रभाव माना जाता रहा है। मंत्र की आराधना जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे हमारे चारों ओर एक प्रकार का कवच बन जाता है। तब बाहर का आक्रमण, बाहर का कुप्रभाव उस कवच को भेद कर व्यक्ति की चेतना तक नहीं पहुंच पाता। वह बाहर ही रह जाता है।

मंत्र की आराधना अरुचि और अग्निमंदता आदि बीमारियों को नियंत्रित करती है। मंत्र-शक्ति की दृष्टि से हम एक पद को लें—**णमो अरहंताणं**—तेजस् केंद्र पर इसका ध्यान करने से क्रोध शांत होता है। आनंद केंद्र पर ध्यान करने से मान क्षीण होता है। विशुद्धि केंद्र पर ध्यान करने से माया और तालु में ध्यान करने से लोभ क्षीण होता है। इस एक मंत्र के द्वारा कषाय चतुष्क क्षीण होते हैं।

मन, वचन एवं काय शुद्धि के साथ सविधि किया गया जप लौकिक ही नहीं, बल्कि लोकोत्तर सुखों को भी देने वाला होता है। मंत्र उभयलोक एवं अलौकिक सुखों का दाता है। तथापि कर्म विच्छेद की दृष्टि से किया जाने वाला जप ही श्रेयस्कर है। ❖

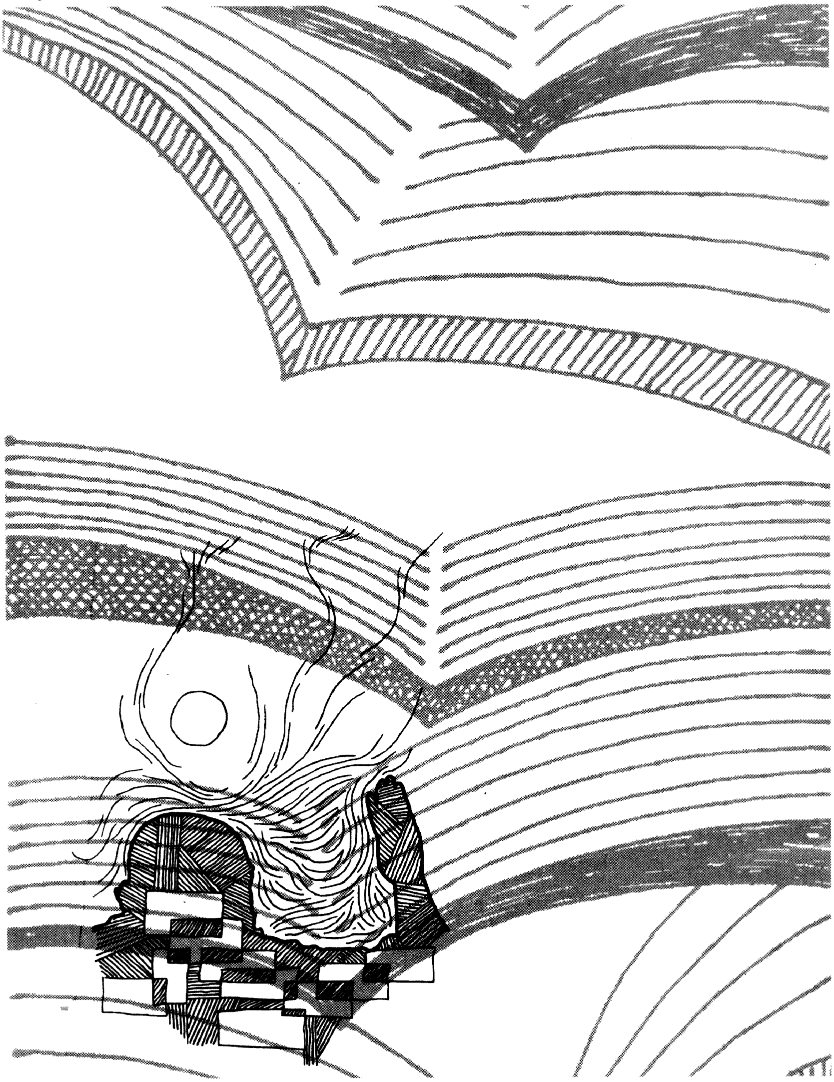

अनुभूति

मनुष्य को भलाई के लिए प्रेरणा किस चीज से मिलती है? आदमी अच्छा क्यों बने? दूसरों के लिए क्यों मरे-खपे? नीतियुक्त आचरण किसलिए करे? न तो कोई ईश्वर है, न आत्मा है, न नैतिकता है, न इस जीवन से परे कोई चीज है। तो क्या मनुष्य जड़-द्रव्यों का जोड़ मात्र है? ऐसे भौतिकवादी चिंतन से समाज का नवनिर्माण असंभव है। मैं केवल शरीर नहीं हूं। मैं चैतन्य हूं और सर्वत्र व्याप्त चैतन्य का एक अंश हूं। उसी अंश की पूर्णता के लिए मुझे अच्छा बनना चाहिए। भलाई की और अच्छा बनने की यही प्रेरणा है।

—जयप्रकाश नारायण

11 अक्टूबर : जन्म जयंती : का स्मरण करते हुए

जब अध्यात्मविद्या में परायणता आ जाती है, यथार्थ को जानने की चेतना जागृत हो जाती है—तो फिर अभ्यास करते-करते ज्ञान में तन्मयता आ सकती है और अपुनरावृत्ति की भूमिका प्राप्त हो सकती है। अतः साधक की बुद्धि ज्ञान की आराधना में लगे। बुद्धि के द्वारा ही नए-नए ज्ञान की आराधना की जा सकती है। तथापि बुद्धि के द्वारा कुत्सित कार्य भी किए जा सकते हैं। बुद्धि के द्वारा कठिनाइयों, समस्याओं को पैदा भी किया जा सकता है, तो बुद्धि के द्वारा उनका समाधान भी किया जा सकता है।

ज्ञान से पा सकते हैं अपुनरावृत्ति

आचार्यश्री महाश्रमण

भारतीय आध्यात्मिक-धार्मिक साहित्य में 'जप' का निर्देश कई जगह मिलता है। भले यह किसी व्यक्ति विशेष के नाम का जप हो या नाम रहित गुणपरक किसी मंत्र का जप हो। जप के साथ भजन-संकीर्तन व भक्ति-गीतों का संगान और ध्यान आदि की साधना भी जुड़ी हुई है। जप करने में मन लगने का मतलब है, हमारा मन सांसारिक वासनाओं से विरक्त हो रहा है। अगर सांसारिक वासनाओं में, विकारों में मन संलग्न है—तो परमात्मा का स्मरण अच्छी तरह नहीं हो सकता। अतः नाम-स्मरण के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया जाता है कि संसार में रहते हुए भी हमारा लगाव परमात्मा के साथ हो जाए, ताकि हम पापकर्म के बंधन से बच सकें।

हम ध्यान दें कि चौबीस घंटों में हमारे मन में कितनी तरह के भाव उभरते हैं? जैसे सिनेमाघर में पर्दे पर विभिन्न दृश्य आते रहते हैं, वैसे ही हमारे मन के 'कैनवस' पर भी अनेक भाव अवतरित होते रहते हैं। हमारे मन में अच्छे भाव भी आते हैं और बुरे भाव भी आते हैं। अच्छे भाव कितनी मात्रा में आते हैं और बुरे भाव कितनी मात्रा में आते हैं—यह स्वयं से पूछने का प्रश्न है। इसका समाधान तभी मिल सकता है, जब हम अपनी दिनचर्या पर ध्यान दें कि दिनभर में मन में क्या-क्या विचार आए?

जिनका लक्ष्य साधना बन गया है, जो मोक्ष-प्राप्ति की साधना के लिए समर्पित हो गए हैं, जो संन्यास स्वीकार कर चुके हैं, आध्यात्मिक साधना के पथ पर चलने के लिए कृतसंकल्प हो चुके हैं—ऐसे व्यक्ति परमात्म-पद प्राप्ति की साधना या आत्म-साक्षात्कार की साधना विशेष रूप से कर सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।5/17

—जिनका मन तदरूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तदरूप हो रही है और जिनकी परमात्मा में ही निरंतर एकीभाव की स्थिति है, ऐसे तत्परायण-पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित होकर अपुनरावृत्ति को अर्थात् परमगति को प्राप्त होते हैं।

गीताकार के उपरोक्त विशेषण बड़े गरिमापूर्ण हैं

और साधक उस स्थिति को प्राप्त भी होते हैं। फिर भी साधना में ऐसी स्थितियां भी आती हैं कि साधक का ध्यान परमात्मा से हट कर अन्यत्र चला जा सकता है।

जैन वाङ्मय में राजर्षि प्रसन्नचंद्र का उल्लेख मिलता है। राजर्षि वह कहलाता है, जो पहले राजा होता है, फिर ऋषि बन जाता है। एक बार राजर्षि ध्यान-साधना में खड़े थे। राजा श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे। राजर्षि को देखते ही मन में भक्ति का भाव जगा। राजा श्रेणिक उनकी प्रशंसा करने लगे, तब एक दुर्मुख नामक दूत ने कहा—'यह तो मात्र ढोंग है। इसने बड़ी नासमझी का काम किया है। अपने छोटे-से बच्चे पर इतने बड़े राज्य का दायित्व सौंपकर स्वयं साधु बन गया। पीछे से शत्रु-सेना ने राज्य पर आक्रमण कर दिया। अब राज्य को लूट लिया जाएगा। उस बच्चे का रखवाला कौन होगा? इसकी पत्नी का क्या हाल होगा?'—जब ध्यान में संलग्न राजर्षि के कानों में ये बातें पड़ीं, तब राजर्षि का ध्यान आत्मा, परमात्मा में न रह कर राज्य में चला गया। उधर जब राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास पहुंचे, दर्शन किए और निवेदन किया—'प्रभो! मैंने मार्ग में देखा कि राजर्षि प्रसन्नचंद्र जो कभी राजा थे, सुखों में रहने वाले थे, वे आज कठोर साधना में संलग्न हैं। प्रभो! यदि राजर्षि अभी आयुष्य का बंध करें तो उनकी अगली गति क्या होगी?'

प्रभु महावीर बोले—'यदि अभी आयुष्य का बंध करें तो वे नरक में जाएंगे।'

राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया—'प्रभो! ऐसे तपस्वी संत भी नरक में जाएंगे तो हम जैसों को कौन-सा स्थान मिलेगा?'

मन ही मन राजर्षि युद्ध करने लगे। शत्रु-सेना पर प्रहार करने के लिए मुकुट उतारकर फेंकना चाहा। पर, जैसे ही हाथ सिर पर गया, तब भान हुआ—'अरे! मैं तो साधु हूं। किसका राज्य? किसका बेटा? किसकी संपत्ति? मैं कहां चला गया?'—जो बहिर्मुखता थी, वह अंतर्मुखता में बदल गई। पुनः ध्यान-साधना में अवस्थित हो गए। विचारों में बदलाव आया। भावों की श्रेणी आरोहण करते-करते राजर्षि उस भूमिका तक पहुंच गए, जहां से पुनः कभी पतन नहीं हो सकता। कुछ ही देर में घोषणा हो गई कि राजर्षि प्रसन्नचंद्र केवलज्ञानी हो गए हैं। राजर्षि प्रसन्नचंद्र अपने स्थान से न हिले, न डुले। प्रारंभ से अंत तक वैसे ही खड़े रहे, किंतु मात्र भावों से वे कहां से कहां तक पहुंच गए?

एक प्राणी में अनेक प्रकार के भाव होते हैं। उसमें लोभ होता है, तो संतोष भी होता है। उसमें परिग्रह की चेतना होती है, तो त्याग और संयम की चेतना भी जाग जाती है। आसक्ति होती है, तो अनासक्ति का भाव भी जाग जाता है। संत के लिए कहा गया कि वह अहिंसा का पुजारी होता है। वह अपने शरीर से, वाणी से और मन से किसी को दुख नहीं देता, किसी की हिंसा नहीं करता—ऐसे संतों के तो दर्शन ही पापनाशक हैं। दया आदमी के जीवन का एक गुण होता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।4/21।।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो आदमी आशा, लालसा से रहित हो जाए, अपने चित्त और आत्मा पर नियंत्रण कर ले, सब तरह के परिग्रह को त्याग दे, वह साधक शरीर से काम करते हुए भी पापों का बंधन नहीं करता।

अगर जीवन में संयम आ गया, तो फिर शारीरिक प्रवृत्ति कर्मबंध का हेतु नहीं बनती। संयम और दया की चेतना एक संत में तो होनी ही चाहिए, जनसाधारण में भी इनका विकास होना चाहिए। एक गांव में एक बार भागवत कथा का आयोजन किया गया। आयोजक एक धनी सेठ था। कथावाचक ने एक सप्ताह तक बड़े अच्छे ढंग से भागवत कथा का वाचन किया। अंतिम दिन सेठ एक सोने की चौकी लेकर आया और बोला—'कथावाचकजी! आपने बड़ा सुंदर आयोजन किया, लोगों को बड़ा लाभ मिला। मैं आपको सोने की चौकी भेंट में, दक्षिणा में दे रहा हूं।'—चौकी देने के बाद थोड़े अहंकार के साथ सेठ ने कहा—'कथावाचकजी! आपने अनेक बार कथाएं की होंगी, परंतु क्या इतना बड़ा दानी आपको आज तक कोई मिला?'—कथावाचक साधक भी था। उसने सोचा, इसमें तो अहंकार का नाग फुफकार रहा है। कथावाचक के पास कुछ रुपए थे। चूंकि वह गृहस्थ संन्यासी था, उसने दो रुपए चौकी पर रखे और कहा—'सेठ साहब!

इन दो रुपयों के साथ आपकी चौकी वापस लौटाता हूं।' फिर बोला—'आज तक आपको इतना बड़ा कोई त्यागी मिला, जिसने दो रुपयों के साथ चौकी वापस लौटाई हो।'—सेठ का अहंकार चूर-चूर हो गया।

हमारे प्राचीन साहित्य में कहा गया है कि साधु को त्यागी होना चाहिए। जो कांता और कांचन अर्थात् स्त्री और धन का त्याग कर देता है—वह संत होता है। परमात्मा का दूसरा रूप संत ही होता है। वह परमात्मा का प्रतिनिधि भी कहलाता है। उसमें त्याग और संयम की चेतना व अलोभता की चेतना का विकास होना चाहिए। त्यागी व्यक्ति शरीर से कर्म करते हुए भी तामस कर्मों के बंधन से मुक्त रहता है।

गीता में शरीरधारी को कर्म करते हुए भी पापकर्म के बंधन से दूर बताया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में भी बंधन से मुक्ति का हेतु वीतरागता को बताया गया है। वीतरागता का तात्पर्य है—राग-द्वेष मुक्त चेतना। यह संयम की साधना है। निर्लोभता और अकषायता वीतराग-चेतना के लक्षण हैं। जो निर्लोभता की साधना करता है, अकषायचेत्ता होता है—वह साधक केवल पापकर्म का बंध ही नहीं रोकता, अपितु नवीन कर्मों का बंधन भी नहीं करता। जैन सिद्धांत बताता है कि वीतराग जब चलता है, तब उसके पैरों के नीचे आकर कोई प्राणी मर भी जाए, तो वीतराग के पापकर्म का बंधन नहीं होता। यही बात शैली परिवर्तन के साथ गीता में प्रस्तुत की गई है। वहां कहा गया है कि जो आदमी आशा, लालसा से रहित है, परिग्रह-मुक्त है और आत्म-नियंत्रित है—वह कर्म करते हुए भी पापकर्म का बंधन नहीं करता। हमें इन दोनों ही ग्रंथों से पापमुक्त रहने की प्रेरणा मिलती है।

साधक का लक्ष्य अपुनरावृत्ति को प्राप्त करना है। पुनरावृत्ति का मतलब है कि एक जन्म के बाद दूसरे जन्म में जाना। कोई जन्मा है, तो उसकी मृत्यु निश्चित है और कोई मरा है, तो उसका जन्म भी सुनिश्चित है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म—यह एक चक्र है। इसमें जन्म-मरण की आवृत्ति बार-बार होती रहती है। इस पर जब विराम लग जाता है, तब अपुनरावृत्ति होती है। गीताकार ने अपुनरावृत्ति शब्द को इस रूप में लिया है कि जो व्यक्ति आत्मलीन या परमात्मलीन हो जाते हैं, विषयभोगों से विरक्त हो जाते हैं—वे अपुनरावृत्ति की भूमिका को प्राप्त कर लेते हैं। वह भूमिका तब प्राप्त होगी, जब ज्ञान की आराधना के द्वारा पाप को प्रकंपित कर दिया जाएगा।

ज्ञान के विभिन्न प्रकार हैं। साधकों के लिए यह ध्यान देना जरूरी है कि लौकिक ज्ञान की आराधना की जा रही है या अलौकिक ज्ञान की आराधना की जा रही है? अध्यात्मविद्या में परायणता आ रही है या भोगविद्या में परायणता आ रही है? जब अध्यात्मविद्या में परायणता आ जाती है, यथार्थ को जानने की चेतना जागृत हो जाती है—तो फिर अभ्यास करते-करते ज्ञान में तन्मयता आ सकती है और अपुनरावृत्ति की भूमिका प्राप्त हो सकती है। अतः साधक की बुद्धि ज्ञान की आराधना में लगे। बुद्धि के द्वारा ही नए-नए ज्ञान की आराधना की जा सकती है। तथापि बुद्धि के द्वारा कुत्सित कार्य भी किए जा सकते हैं। बुद्धि के द्वारा कठिनाइयों, समस्याओं को पैदा भी किया जा सकता है, तो बुद्धि के द्वारा उनका समाधान भी किया जा सकता है।

आयारो में कहा गया—**तद्दिट्ठीए तम्मोत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तन्निवेसणे** *(5/68)*—मुनि महावीर-दर्शन में दृष्टि नियोजित करे, उसमें तन्मय हों, उसे प्रमुख बनाएं, उसकी स्मृति में एकरस हों।

जो अपने आपको परमात्मा में ही नियोजित करने वाले हैं, उसी में निष्ठा रखने वाले हैं—वे व्यक्ति ज्ञान के द्वारा पाप का नाश करके अपुनरावृत्ति की स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। ❖

आत्मसाक्षात्कार अपूर्व अनुभूति है। उसके लिए कोई उपमान नहीं मिल सकता, इसलिए शब्दों में उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

—डॉ. संपूर्णानंद

प्रकृति पर संगीत का गहरा प्रभाव पड़ता है। माना गया है कि पंचम स्वर में उद्गीत श्रवण से विरहक वृक्ष पर पुष्प खिल जाते हैं। संगीत की स्वर लहरियों से पेड़-पौधे शीघ्रता से विकसित होते हैं। संगीत पाषाण हृदय को भी द्रवित कर देता है। कहा जाता है कि लव और कुश जब सरयू के किनारे पर बैठकर मधुर ध्वनि में राम-महिमा गाते, तब सरयू का बहता पानी रुक जाता था। आज भी जंगलों में ऐसी अनेक वनस्पतियां हैं जिनसे रात्रि में संगीत स्वर-लहरी निकलती है। कल-कल करती नदियों और झरते हुए झरनों से सुंदर ध्वनियां निकलती हैं।

संगीत : आत्मानुभूति का उत्कृष्ट रूप

❁ साध्वी कंचनकुमारी

हमारे दार्शनिकों, धार्मिकों एवं विद्वानों द्वारा ध्वनि की महत्ता को प्रारंभ से ही स्वीकारा गया है। संगीत की उत्पत्ति ध्वनि-विज्ञान से ही हुई है। संगीत एक ऐसी कला है—जो व्यक्ति को स्थूल से सूक्ष्म तथा बाहर से भीतर की ओर आरोहण कराती है। संगीत ही भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर जाने को प्रेरित करता है। संगीत एक वशीकरण मंत्र है। संगीत संजीवनी है, जो जड़ और चेतन, दोनों को प्रभावित करता है। मस्तिष्क व स्नायुओं को संगीत ही शांति प्रदान करता है। संगीत में तनाव को कम करने एवं शांति-सौहार्द को वृद्धिंगत करने की अद्भुत क्षमता है। निषेधात्मक विचारों को सकारात्मक तथा प्रतिकूल को अनुकूल बनाने की ताकत संगीत में ही है। —**'नास्ति नादसमोरस'**—संगीत के समान अन्य कोई रस नहीं है। जिसका जीवन संगीतमय है, वह अपने आप को कभी असहाय या अकेला महसूस नहीं करेगा। आचार्य हेमचंद्र ने लिखा है—

न साम्येन विना-ध्यान न ध्यानेन विना च तत्!
निस्कम्पं जायते तस्माद् द्वयमन्योन्यकारणम्।।

संगीत ऐसी योग-विद्या है जो सूक्ष्म स्नायुओं को झंकृत कर सुषुप्त कुंडलिनी को जागृत कर देता है। चित्त एकाग्रता का अत्यंत सुगम मार्ग है—संगीत। संगीत का स्वरों के साथ तादात्म्य होने से अकरणीय कार्य भी सुगमता से संभव हो जाते हैं। इतिहास में पढ़ा है कि जब तानसेन 'मल्हार राग' में गाते थे तब उस संगीत व स्वरों से प्रभावित हो हरिण निकट आ जाते थे। जब वे दीपक राग गाते तो उसके प्रभाव से महलों के शिखर पर दीपक जल जाते। आचार्य मानतुंग ने अत्यंत भक्तिभाव से तीर्थंकर भगवान ऋषभ की स्तुति की, जिसके प्रभाव से अड़तालीस तालों के बंधन टूट गए। मंत्र-ध्वनि के प्रभाव से आचार्य सिद्धसेन पर लगने वाले कोड़े राजा विक्रमादित्य के अंतःपुर स्थित रानियों की पीठ पर लगने लगे। महामंत्र की ध्वनि तरंगों के प्रभाव से गले का सर्प पुष्पमाला बन गया।

संगीत का रिश्ता आत्मा से होता है। मधुर स्वर लहरियों से व्यक्ति आनंद के सागर में डुबकियां लगाने लगता है। भारत भूमि में अनेक संगीतज्ञ हुए हैं—तानसेन,

बैजू बावरा, सूरदास, मीरा, रसखान, उस्ताद अली खां, अमजद खां, पंडित रविशंकर शर्मा आदि-आदि। संगीतकारों की इसी श्रृंखला में आचार्यश्री तुलसी भी एक बड़ा व्यक्तित्व हैं।

आचार्यश्री तुलसी एक धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, प्रख्यात प्रवचनकार, प्रबुद्ध चिंतक, प्रखर वक्ता, प्रकृष्ट लेखक के रूप में तो विख्यात हैं ही, पर साथ ही साथ वे मधुर संगायक भी थे। उनकी गायन कला अद्भुत थी। वे नैसर्गिक प्रतिभा के घनी थे। उनमें सृजन एवं संगान का युगपत योग था। उनके गीतों की मधुर ध्वनि तथा उनका आरोह-अवरोह श्रोता के मन को बांधने वाला होता था। अपने प्रवचनों में वे जब संगीत का प्रयोग करते थे, तब एक अलग-सा समा बंध जाता था। उस संगान का रसपान करने के लिए श्रोता निर्निमेष हो जाते। उन्हें धुनों का भी गहरा ज्ञान था। अपने प्रवचनों में वे ऐसी झूमती राग का आलाप लेते कि सुनने वाले झूमने लग जाते। प्राचीन राग-रागिनियों के साथ-साथ वे लोकगीतों को भी पसंद करते थे। उन्होंने लोक-धुनों में सैकड़ों गीतों की रचनाएं कीं। आचार्यश्री तुलसी का गला प्रारंभ से ही सुरीला था। उनकी राग बुलंद और मनमोहक होती थी। वे 'बांसुरी महाराज' के रूप में प्रसिद्ध थे।

संगीत का प्रकृति पर प्रभाव

प्रकृति पर संगीत का गहरा प्रभाव पड़ता है। माना गया है कि पंचम स्वर में उद्गीत श्रवण से विरहक वृक्ष पर पुष्प खिल जाते हैं। संगीत की स्वर लहरियों से पेड़-पौधे शीघ्रता से विकसित होते हैं। संगीत पाषाण हृदय को भी द्रवित कर देता है। कहा जाता है कि लव और कुश जब सरयू के किनारे पर बैठकर मधुर ध्वनि में राम-महिमा गाते, तब सरयू का बहता पानी रुक जाता था। आज भी जंगलों में ऐसी अनेक वनस्पतियां हैं जिनसे रात्रि में संगीत स्वर-लहरी निकलती है। कल-कल करती नदियों और झरते हुए झरनों से सुंदर ध्वनियां निकलती हैं।

संगीत का तिर्यंच जगत पर प्रभाव

तिर्यंच जाति भी संगीत सुनने को समुत्सुक रहती है। जन्मजात विरोधी तिर्यंच भी अपना जातिगत वैर भूलकर संगीत के सामने तन्मय हो जाते हैं। कुत्ते, बिल्ली, सांप, चूहे निर्भयता से साथ-साथ बैठे रहते हैं। बांसुरी की मीठी धुन से हरिणों की टोलियां निकट आ संगीतज्ञ को घेर लेती हैं। स्विट्जरलैंड एवं भारत में कई जगहों पर गो-दोहन के समय गो-कक्षों में संगीत-लहरी ध्वनि प्रसारक यंत्रों से प्रसारित की जाती है। तब गाएं शांत मन से अधिक मात्रा में दूध देती हैं। यह भी मानना है कि मधुर-ध्वनि से भेड़ें पुष्ट हो जाती हैं और पेड़-पौधों को विकसित किया जा सकता है। पालीताना में 'नमस्कार महामंत्र' एवं 'भक्तामर' की कैसेट गायों को रोज सुनाई जाती है।

संगीत का अचिंत्य प्रभाव

संगीत न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि शारीरिक स्वस्थता में भी योगभूत बनता है। डॉ. हेलेन बोनी के द्वारा संगीत चिकित्सा होती है। चिकित्सा विज्ञान ने संगीत को भी एक 'थेरेपी' माना है। वैदिक ग्रंथों, जैन ग्रंथों और ईसाई-धर्म के प्रमुख ग्रंथों में भी संगीत को रोगों की चिकित्सा का एक हेतु माना गया है। सत्तरहवीं शताब्दी के एक जर्मन वाद्ययंत्र पर लिखा हुआ पाया गया कि अगर कोई दूसरी चीज काम न आए, तो संगीत ही आंसुओं को सुखा देता है। आचार्यश्री तुलसी भी संगीत को चिकित्सा का सूत्र मानते थे। संगीत शास्त्र के अनुसार राग-भैरवी से कफ-जनित बीमारियों का शमन होता है। राग सोरठ व जैजैवंती मानसिक रोग से मुक्ति दिलाने में समर्थ है। हिंडोल राग से मेधा-वृद्धि के साथ-साथ यकृत और प्लीहा की स्वस्थता बढ़ती है। बर्लिन विश्वविद्यालय में अनुसंधान के दौरान जाना गया कि शंखध्वनि से 'बैक्टीरिया' और दूसरे जीवाणु रोग नष्ट होते हैं। प्रभाती तथा दीपक राग से आंखों की बीमारियां नष्ट हो जाती हैं और आंख की ज्योति बढ़ती है। सुखकारी-राग से हृदय संबंधी रोग उपशांत होते हैं। शरीर में 'कॉलस्ट्रोल' जमा नहीं होते, क्योंकि दीर्घश्वास से कषाय वलय उपशांत होते हैं। पंचम-राग से गैस संबंधी रोगों से राहत मिलती है। स्वर-लहरियों के प्रभाव से मलेरिया, मिरगी एवं कोढ़ रोग से पीड़ित व्यक्ति को राहत मिलती है तथा बहरे व्यक्तियों को सुनाई देने लग जाता है। भारतीय संगीत का

रचना स्वर-चक्रों से संबंधित है, इसलिए भारतीय संगीत चिकित्सा क्षेत्र में प्रभावी रहा है।

महात्मा गांधी ने लिखा है—संगीत से मन शांत होता है। वे बताते हैं—'सन् 1907 में दक्षिण अफ्रीका में कातिलाना हमला हुआ, तब मैं बहुत अशांत और तनावग्रस्त था, लेकिन उस समय मधुर संगीत की स्वर लहरियों के कारण मेरी अशांति कपूर की तरह काफूर हो गई।' एक जर्मन औषध विशेषज्ञ ने स्पष्ट लिखा है कि—संगीत में इतनी संभावनाएं हैं कि समय आने पर रोगियों को देखने के लिए 'स्टेथोस्कोप' और दवाइयों के साथ-साथ मधुर संगीत के 'रिकॉर्ड' भी रखने पड़ेंगे। नागपुर के पास खाकरी गांव में कृषि कार्यों में भी मंत्रों के प्रभावों के प्रयोग हो रहे हैं और अच्छे परिणाम सामने आए हैं। रासायनिक खाद वाले क्षेत्रों में अभिमंत्रित जल से सींचे जाने पर पैदावार में बढ़ोतरी हुई है। महाकवि कालिदास ने **'मालविकाग्निमित्रम्'** में संगीत को अतींद्रिय ज्ञान की जननी कहा है। गणदास ने कहा है—संगीत आत्मानुभूति का उत्कृष्ट रूप है।

तेरापंथ धर्मसंघ में प्रारंभ से ही संगीत की महत्ता का अंकन किया जाता रहा है। आद्यप्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु ने विविध राग-रागिनियों में अपने कथ्य को आबद्ध करके साहित्य जगत को नया आलोक दिया है। श्रद्धा, भक्ति, तत्त्वज्ञान को संगीत के माध्यम से लोकप्रिय बनाया है। श्रीमद्जयाचार्यजी भी समर्थ साहित्यकार थे। उनकी साहित्य रचना बेजोड़ थी। पन्नषणा जैसे कठिन आगम को सरस गीतों में निबद्ध कर उन्होंने जैन जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। भगवती जैसे विशाल आगम को भी 'गेय काव्य' में अनूदित कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। लगभग पांच सौ गीतिकाओं को संगीत स्वरों में आबद्ध कर जैन शासन में कीर्तिमान स्थापित किया। गेय काव्य में इतना विशाल कार्य करने वाले संभवतः वे जैन शासन के प्रथम आचार्य थे। बताते हैं कि संकट के समय 'मुणिंद मोरा', 'चौबीसी' इत्यादि का तन्मयता से संगान करने से अंगारों की वर्षा रुक गई।

आचार्यश्री तुलसी की काव्य रचनाओं में भी वर्णों का चयन, भाषा की प्रांजलता और भावों की अभिव्यंजना का मणिकांचन सुयोग देखा जाता है। जब भी प्राचीन या अर्वाचीन राग-रागिनियों में स्व-रचित गीतिकाओं का वे संगान करते, जनता मंत्रमुग्ध हो जाती। भरत मुक्ति, आषाढ़भूति चंदन की चुटकी, मैं तिरूं म्हारी नाव तिरै, कालुयशोविलास, माणक महिमा, डालम चरित इत्यादि गेय काव्य एक कुशल कलाकार की सफल लेखनी के परिचायक हैं। **'सिरियारी रो संत'**—गीत का जब संगान होता है तब दृश्य ही बदल जाता है। ऐसा लगता मानो 'भिक्षु स्वामी' साक्षात् पधार गए हों। आचार्यश्री तुलसी की रचनाएं बेजोड़ और गायनशैली अद्वितीय थी। आपकी आवाज आज भी सिंहनाद की तरह कर्णकुहरों में निनादित है। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुलस्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

साहित्य को व्यावसायिक दक्षता के साथ जन-जन तक पहुंचाना वर्तमान युग की मांग है। प्रकाशित साहित्य का विपणन अपने आपमें एक दक्ष प्रबंधन की अपेक्षा रखता है। जैन समाज के अपने अनेक प्रकाशन संस्थान हैं, पर दक्ष प्रबंधन व विपणन न होने से ये प्रकाशन सीमित लोगों तक ही पहुंच पाते हैं। क्या जैन समाज में दक्ष प्रबंधकों की कमी है? यदि नहीं है तो, क्या कारण कि जैन साहित्य व्यापक रूप में पूरे विश्व में उपलब्ध नहीं हो रहा है? जैन समाज को इस पर गंभीर चिंतन कर जैन साहित्य को विश्वव्यापी बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

एक चिंतनीय पहलू : सक्रिय व गंभीर होने की जरूरत

डॉ. रश्मिभाई झवेरी

जैन समाज द्वारा **जैनं जयतु शासनम्** एक स्वीकृत उद्घोष है। हम सब—जो जैनमत को मानने वाले हैं, चाहते हैं कि जैन धर्म विश्वव्यापी बने। वह इसलिए कि—जैन धर्म तीर्थंकर, अरिहंत, केवली, वीतराग-देव द्वारा प्ररूपित है। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने इसे निरूपित किया, जो आज हमें जैन धर्म के रूप में प्राप्त है। नंदी सूत्र के अनुसार भगवान महावीर की स्तुति में उन्हें 'जगद्गुरु' के रूप में अभिस्तुतित किया गया है, पर जैन समाज के लिए आज यह आत्म-चिंतन का प्रश्न है कि हमने भगवान महावीर की वाणी को विश्वव्यापी बनाने की दिशा में क्या किया?

सामान्य सर्वेक्षण से संभवतः यह ज्ञात हो जाएगा कि आज विश्व में सबसे अल्पज्ञात धर्म केवलमात्र जैन धर्म है। विश्व के प्रमुख धर्मों की गणना में जैन धर्म की उतनी ख्याति नहीं है, जितनी ख्याति कतिपय अन्य धर्मों की है। जबकि विश्व के अनेक विद्वानों का यह अभिमत है कि जैन धर्म अन्य धर्मों की तुलना में अधिक तर्कसंगत, वैज्ञानिक, सर्वकल्याणकारी और सांप्रदायिक कट्टरता से मुक्त है। फिर क्या कारण है कि जैन धर्म और भगवान महावीर के विषय में विश्व में बहुत कम जानकारी है? आज के सूचना तकनीक के युग में प्रौद्योगिकी ने ऐसे सहज माध्यम उपलब्ध कराए हैं, जिनके द्वारा पूरे विश्व में जन-जन तक जैन धर्म एवं भगवान महावीर की विपुल जानकारी पहुंचाई जा सकती है। भगवान महावीर की वाणी और उनके अनुपम सिद्धांतों और उनके अनुप्रयोगों को विश्वजन हितार्थ अधिकाधिक व्यापक बनाया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में गंभीर अनुचिंतन की अपेक्षा है।

जैन समाज के विभिन्न संप्रदायों में जैन शासन की प्रभावना की दृष्टि से अनेक भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियां चल रही हैं। उन्हें अपनी-अपनी दृष्टि से आवश्यक मान कर चलाया जाता है। इसी के साथ जैन धर्म को विश्वव्यापी बनाने की दिशा में जिन बातों की अपेक्षा है, यदि उन्हें भी प्राथमिकता मिले और पूरा जैन समाज इस दिशा में सक्रियता से कदम उठाए तो कोई कारण नहीं कि हम इस कार्य में सफल न हों।

इसके क्रियान्वयन में दो प्रकार के संसाधन अपेक्षित

हैं—1. मानव-संसाधन और, 2. आर्थिक संसाधन व कुशल प्रबंधन। पहले प्रकार के संसाधन में ऐसे विद्वानों की आवश्यकता है जो जैन दर्शन व तत्त्वज्ञान के मर्मज्ञ हों। इनमें साधु-साध्वियां भी हो सकती हैं और श्रावक-श्राविकाएं तथा अन्य व्यक्ति भी हो सकते हैं, जिन्हें विशेष रूप से इस कार्य में जोड़ा जा सकता है। साथ ही वे स्वयं भी अपने को इस कार्य में जोड़ें। दूसरे प्रकार का संसाधन समाज-सापेक्ष है।

जैन समाज प्रथम प्रकार की संसाधन-पूर्ति में कितना सक्षम है, यह गंभीर आकलन का विषय है। जैन समाज में वैसे विद्वान साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं की कमी नहीं है, न अन्य विद्वान व्यक्तियों की ही कमी है। फिर भी इस कार्य के लिए ऐसे विद्वानों की जरूरत है, जो जैन सिद्धांत और जैन वाङ्मय सहित अन्य अनुशासनों के भी मर्मज्ञ हों।

दूसरे प्रकार के संसाधन की दृष्टि से भी जैन समाज समृद्ध है और पूर्ण आकलन करने से यह ज्ञात हो सकता है। सामान्य आधारों पर यह प्रतीत हो रहा है कि धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक प्रवृत्तियों के लिए समाज विपुल मात्रा में संसाधन जुटाता रहा है। पिछली शताब्दी में जैन विद्वानों और साथ ही अन्य विद्वानों ने जैन वाङ्मय—विशेषतः आगम वाङ्मय के निर्माण की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। इनका प्रकाशन भी हिंदी, अंग्रेजी आदि आधुनिक भाषाओं में हुआ है। किंतु, अन्यान्य धर्मों के वाङ्मय की तुलना में इनका प्रचार-प्रसार काफी अल्प है। इस दिशा में प्रचुर प्रयत्न नहीं हो पाया है। युग की रफ्तार को देखते हुए इस दिशा में अविलंब लगना चाहिए। अल्प समय में अधिकाधिक उपलब्धि कैसे हो, इसका प्रयत्न करना चाहिए।

पिछले छह-सात दशकों में इस दिशा में कार्य करने वाले कतिपय उच्च स्तरीय शोध-संस्थानों की स्थापना जैन समाज के प्रयत्नों से हुई है और उनमें कार्य भी हो रहा है। ऐसे संस्थानों की संख्या में अच्छी अभिवृद्धि हो तथा गुणवत्ता और कार्यकारिता की दृष्टि से इनका अच्छा विकास हो—यह अपेक्षा है।

विद्वानों और शोध-संस्थानों द्वारा जो कार्य निष्पन्न होता है, उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी जरूरी है। ऐसा नहीं होने से किए हुए कार्य की निष्पत्ति सीमित रह जाती है।

साहित्य को व्यावसायिक दक्षता के साथ जन-जन तक पहुंचाना वर्तमान युग की मांग है। प्रकाशित साहित्य का विपणन अपने आपमें एक दक्ष प्रबंधन की अपेक्षा रखता है। जैन समाज के अपने अनेक प्रकाशन संस्थान हैं, पर दक्ष प्रबंधन व विपणन न होने से ये प्रकाशन सीमित लोगों तक ही पहुंच पाते हैं। क्या जैन समाज में दक्ष प्रबंधकों की कमी है? यदि नहीं है तो, क्या कारण कि जैन साहित्य व्यापक रूप में पूरे विश्व में उपलब्ध नहीं हो रहा है? जैन समाज को इस पर गंभीर चिंतन कर जैन साहित्य को विश्वव्यापी बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने चाहिए।

विश्व के सभी विश्वविद्यालयों, शैक्षिक संस्थानों, सार्वजनिक पुस्तकालयों में—जहां सभी प्रमुख धर्मों का मौलिक साहित्य एवं उनके सिद्धांतों की टीकाएं उपलब्ध हैं, वहां जैन धर्म का मौलिक वाङ्मय एवं अन्य व्याख्यात्मक साहित्य नगण्य रूप में ही मिल पाता है। यह सोचनीय स्थिति है।

साहित्य की उपलब्धि 'इंटरनेट' आदि पर भी व्यापक रूप में करवाना, वर्तमान युग में महावीर की वाणी और उनके सिद्धांतों को विश्वव्यापी बनाने की दिशा में एक ठोस कदम हो सकता है।

यह युग विज्ञापन एवं 'मीडिया' का युग है। प्रायः देखा जाता है कि जैन साहित्य के मुद्रण, प्रकाशन व इसकी साज-सज्जा आदि पर तो काफी अर्थ-व्यय किया जाता है, पर उसके व्यापक विज्ञापन आदि पर कम ध्यान दिया जाता है। जैन समाज इस दिशा में काफी पीछे है—ऐसा लग रहा है। असली-सत्य मार्ग को यदि व्यापक रूप में विज्ञापित किया जाए तो वह विश्व मानस को प्रभावित कर पाएगा—ऐसा मानना है।

विज्ञापन की भांति ही 'प्रिंट मीडिया' और 'इलेक्ट्रोनिक मीडिया' के माध्यम से आकर्षक प्रस्तुति भी आधुनिक युग का सशक्त साधन है। अलग-अलग 'टारगेट ग्रुप' के लिए अलग-अलग ढंग में प्रचार-प्रसार हो, तो वह अधिक प्रभावपूर्ण होगा। जैसे; बच्चों के लिए

शेष पृष्ठ 37 पर

बुद्धि द्वारा हम अनंत तक पहुंच सकते हैं। केवल इतना बोध प्राप्त कर सकते हैं कि 'अनंत' की सत्ता है, उसका अस्तित्व है। किंतु, हम यह नहीं बता सकते कि वह क्या है, उसका स्वरूप क्या है? यह बात ठीक इसी प्रकार है कि जिस प्रकार कोई पीछे से आकर आंखें मीच ले। अब यह तो मालूम है कि पीछे कोई है और वह कोई दोस्त-मित्र ही होगा। क्योंकि कोई अपरिचित ऐसा साहस कभी नहीं करेगा, किंतु बताने में असमर्थ हैं कि वह कौन है। 'अनंत' में बुद्धि का प्रवेश नहीं है। यदि 'अनंत' को जानना संभव होता, तब न तो ज्ञाता ही 'अनंत' रहता और न ज्ञेय ही।

शांति : जरूरी है विश्व-व्यापकता का बोध

स्वामी रामतीर्थ

इंद्रियों के द्वारा अनंत का बोध कभी भी नहीं किया जा सकता। यह कैसी असंभव बात होगी कि हम इंद्रियों द्वारा 'अनंत' को ज्ञात कर लें? अनंत का अनुभव सदा विश्वभावना, विश्वानुभूति या ब्रह्मभावना के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इंद्रियां उसे कैसे जान सकती हैं? यह इंद्रियों का विषय ही नहीं है। आत्मा के बोध के लिए अपने से बाह्य किसी अन्य पदार्थ का आसरा नहीं लिया जा सकता।

कहा जाता है कि दो भाग 'हाइड्रोजन' तथा एक भाग 'ऑक्सीजन' के मिलने से जल बन जाता है। क्या इसे हम वास्तव में जानते हैं? कदापि नहीं। हालांकि सभी रसायनशास्त्री यह बतलाते हैं कि यह एक तथ्य है। परंतु, हम इसे तभी स्वीकार करेंगे, जब प्रयोगशाला में स्वयं इसका परीक्षण करके देख लेंगे। तभी हमारे लिए यह एक सचाई होगी। कृष्ण, ईसा अथवा बुद्ध कोई भी हो, आप अपने से बाह्य किसी को प्रमाण नहीं मान सकते। उसका बोध प्राप्त करने के लिए स्वयं को ही प्रयोग-परीक्षण करना पड़ेगा।

यदि एक नौजवान कहे कि मेरे पिता की पाचन-शक्ति बहुत अच्छी है। वे मेरे लिए, मेरा खाना हजम कर देंगे—तो क्या ऐसा होना संभव है? कदापि नहीं, पुत्र को अपना भोजन स्वयं ही पचाना होगा। इसी तरह ईश्वर के साथ अद्वैत का अनुभव मुझे कोई दूसरा नहीं करा सकता। इसका अनुभव मुझे स्वयं ही करना पड़ेगा।

नास्तिक तथा स्वतंत्र विचारक, दोनों का ही यह कथन है—'मैं खुद खोज करूंगा।' एक का कथन है—'प्रकाश दियासलाई में है', हम उसकी खोज कैसे करें? इस हेतु दियासलाई के खंड-खंड कर दिए जाते हैं, परंतु प्रकाश प्राप्त नहीं होता। सभी जानते हैं कि देह में ही प्राण होते हैं, पर देह के टुकड़े-टुकड़े कर डालने से प्राण नहीं प्राप्त होता। अस्थियों का चूर्ण-विचूर्ण कर दें, किंतु प्राण वहां भी प्राप्त नहीं होता। तब कहा जाता है कि यदि कोई वास्तविकता है, तो आत्मा (मैं) ही है। परंतु, आत्मा भी जानी नहीं जा सकती। यह साफ ही है कि इस प्रकार से उसका बोध नहीं प्राप्त हो सकता। बुद्धि द्वारा हम अनंत तक पहुंच सकते हैं। केवल इतना बोध प्राप्त कर सकते हैं कि 'अनंत' की सत्ता है, उसका अस्तित्व है। किंतु, हम यह नहीं बता सकते कि वह क्या है, उसका स्वरूप क्या

है? यह बात ठीक इसी प्रकार है कि जिस प्रकार कोई पीछे से आकर आंखें मीच ले। अब यह तो मालूम है कि पीछे कोई है और वह कोई दोस्त-मित्र ही होगा। क्योंकि कोई अपरिचित ऐसा साहस कभी नहीं करेगा, किंतु बताने में असमर्थ हैं कि वह कौन है। 'अनंत' में बुद्धि का प्रवेश नहीं है। यदि 'अनंत' को जानना संभव होता, तब न तो ज्ञाता ही 'अनंत' रहता और न ज्ञेय ही।

हम इसके बोध को विश्वभावना द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। इस ब्रह्मभावना या विश्वभावना का विकास कैसे होता है? हमारे सम्मुख एक बच्चा है। बच्चे में संसार का ज्ञान नहीं होता और उसमें विच्छिन्नता—व्यक्तिगत अलगाव का बोध—भी नहीं होता। एक छोटा-सा बालक है, जिसे कोई ज्ञान नहीं है। तो क्या उससे हम तब तक बात नहीं कर सकते, जब तक उसे अपने बारे में कुछ ज्ञान नहीं हो जाता? क्या हम उसके ज्ञानवान होने की प्रतीक्षा करें? अपने इर्द-गिर्द की जिन चीजों से वह घिरा रहता है, उन सबकी जानकारी जब तक बालक को नहीं हो जाती, तब तक क्या हम रुके रहते हैं? .

ऐसा नहीं होता। बच्चा जब छोटा ही होता है, उसी समय उसका नाम रख दिया जाता है। मां-बाप उस बच्चे को उसी नाम से बुलाने लग जाते हैं। वे उससे भिन्न-भिन्न चीजों के बारे में बातें भी करते हैं। लोग भी उससे बातचीत करते हैं। और, जब बच्चा जरा बड़ा हो जाता है, तब वह मुंह से ऐसे शब्द करता है, जिनका कुछ अर्थ हमें विदित नहीं होता, परंतु बारंबार 'अम्मा' और 'बाबा' की ध्वनि कान में पड़ने के कारण वह उन शब्दों का अनुकरण करता है। 'वह अम्मा' जब कहता है, तो उसका पिता उसकी मां से कहता है—बच्चा तुम्हें पुकार रहा है। इसी प्रकार जब वह 'बा' शब्द कहता है, तो उसकी मां उसके पिता से कहती है—बच्चा आपको पुकार रहा है। बाप तब बालक से कहता है—'इधर आओ।' क्या बालक इस अर्थ को समझता है?—नहीं, वह तो बाप की फैली हुई बांहों तथा पुचकार के ढंग से समझता है कि पिता का यह संकेत उसे पास बुलाने के लिए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक में अपनी (व्यक्तिगत) परिच्छिन्नता के भाव का ज्ञान उन व्यक्तियों की संगति से विकसित होने लगता है, जो उसके इर्द-गिर्द रहते हैं। ठीक इसी प्रकार विश्वभावना का ज्ञान भी ऐसे मनुष्यों के संग से विकसित होता है, जिनमें वह भावना विद्यमान होती है तथा जो अपने ब्रह्मत्व का अनुभव किया करते हैं।

यदि आप उदासी तथा खेद का अनुभव करने की इच्छा करते हैं तो उनकी संगति में निवास कीजिए—जो हर समय खिन्नता में डूबे रहते हैं। इसके विपरीत, यदि आप आनंद की अनुभूति प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं—तो उनकी संगति कीजिए, जिनका जीवन आनंद एवं उल्लास से पूर्ण है। भावार्थ यह है कि सिर्फ सत्संग द्वारा ही यह भावना रूपी ज्योति उद्दीप्त होती है। भले ही प्रकृति का संग हो अथवा ज्ञानी महापुरुषों का। प्रबुद्ध महात्माओं के लिखे ग्रंथ से अनुराग हो अथवा उनके उपदेश से—केवल सत्संग द्वारा ही ज्ञान रूपी अग्नि उद्दीप्त होती है।

जिस समय कोई कहता है—'मैं परमात्मा हूं'—उस समय उसका क्या अभिप्राय होता है? क्या उसका तात्पर्य तुच्छ व्यक्तित्व (परिच्छिन्न मैं) से होता है? नहीं, कभी नहीं। इस चित्त से? नहीं, कभी नहीं। समझ लें कि एक व्यक्ति 'शास्त्री' है। उसने यह उपाधि पाई है। एक मनुष्य सम्राट है। सम्राट उसकी पदवी है। ये उपाधियां अथवा पदवियां व्यक्तित्व के लिए बाह्य वस्तुएं हैं। मानो कोई चीज ऊपर से टांक दी गई हो। इसी प्रकार जब यह कहते हैं कि 'सर्प काला है'—तब 'कालापन' सर्प नहीं हो जाता। कालापन सर्प का एक गुण (रंग) है। परंतु, जिस समय हम सर्प को कहते हैं कि यह रस्सी है, तब यह सर्वथा भिन्न कथन हो जाता है।

मैं महाराजाधिराज हूं। महाराजाधिराज एक पद है। परंतु, जब यह कहते हैं कि 'मैं ईश्वर हूं'—तब आशय क्षुद्र अहं—परिच्छिन्न व्यक्ति से नहीं होता। जैसे रस्सी को सांप समझना एक भ्रांति है। अज्ञान से रस्सी को सांप समझ लेते हैं, परंतु यह सचाई नहीं है। वस्तुतः वह रस्सी ही है।

जल की दो तरंगें हैं। एक तरंग में जिस प्रकार का जल है, उसी प्रकार का जल दूसरी में है। पानी वस्तुतः एक समान है। सारे समुद्र में पानी बिलकुल एक-सा है।

किंतु, यहां वह एक रूप में दृष्टिगोचर होता है, तथा वहां दूसरा। तब क्या इसमें कोई अन्य आत्मा है तथा उसमें कोई अन्य? नहीं, कदापि नहीं। केवल एक ही आत्मा है। जो सर्व में एक है, सर्वरूप है। वह अद्वितीय है। ये सभी देहें आत्मा की हैं। इनमें कोई भिन्नता, यानी अंतर नहीं है।

प्रकाश को भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इंग्लिश में उसे 'लाइट' (light) कहा जाता है, तो जर्मन भाषा में उसे 'लिच्ट' (licht) कहा जाता है—आदि। नाम कुछ भी हो, प्रकाश तो वही है—क्या यह तथ्य नहीं? प्रकाश सभी जगह वही है, एक है। हालांकि हम उसे नाना नामों से पुकारते हैं। नामों के कारण 'आत्मा' में कोई अंतर नहीं पड़ता। वह आत्मा—ब्रह्म—वस्तुतः सर्वरूप है।

हमारी देह सब अंगों से एक पूर्ण इकाई (एक युनिट) है। यदि हाथ स्वाधीन रूप में रहने का निश्चय कर ले और कहे कि मैं काम करके रोजी-रोटी कमाता हूं, अतः सारी कमाई का फल मैं ही भोगूंगा—तो किस प्रकार से निर्वाह हो सकता है? यदि हाथ यह हठ करे कि मुंह भोजन न खाए तथा पेट उसे न पचाए, तो हाथ की कैसी दशा होगी? यदि रुपए हाथ के साथ चिपका दिए जाएं, अथवा ततैया से हाथ को डंक मरवाया जाए, तो हाथ में सूजन हो जाएगी, उसमें पीड़ा होने लगेगी। यदि हाथ को काट दिया जाए, तो लगातार कष्ट तथा दर्द रहेगा। कारण, हाथ संपूर्ण शरीर का एक भाग (अंग) है। यही कारण है कि पेट जब भोजन का पाचन कर लेता है, तो वह हाथ को भी उसका उचित अंश भेज कर, उसका पालन-पोषण करता है। सभी अंगों का समुदाय परस्पर तालमेल से युगपत (एकसाथ) काम करता है।

ठीक इसी तरह जब हम समस्त संसार से अपने-आप को काट कर अलग हो जाते हैं—तब हम कष्ट पाते हैं, दुखी होते हैं। जब तक मानव को अपनी विश्व व्यापकता (मानव मात्र से अभिन्नता) का अनुभव नहीं होता, तब तक उसे शांति नहीं प्राप्त हो सकती। ❖

एक चिंतनीय पहलू : सक्रिय व गंभीर होने की जरूरत

पृष्ठ 34 का शेष

कहानी, अभिनय, संगीत आदि के माध्यम से कथ्य की प्रस्तुति की जाए। यही सामग्री श्रव्य-दृश्य 'सीडी' आदि के माध्यम से भी प्रस्तुत की जा सकती है। साहित्य की भांति इसकी उपलब्धि भी समुचित 'मार्केटिंग' के साथ हो तो कोई कारण नहीं कि वह करोड़ों-करोड़ों लोगों तक न पहुंचे।

भगवान महावीर की वाणी आज आगम-वाङ्मय के रूप में उपलब्ध है। श्वेतांबर और दिगंबर—दोनों परंपरा में अपना-अपना आगम-साहित्य है। उसे समुचित साधनों के द्वारा विश्वव्यापी बनाने की आवश्यकता है। यह अपने आपमें बहुत विशाल कार्य है, जिसके लिए अपेक्षा है कि इस क्षेत्र के विद्वानों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाए।

इसके लिए प्रतिभावान मेधावी विद्वानों को खोजना होगा। उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन देकर इस कार्य में उनको नियोजित करना होगा। मूल भारतीय भाषाओं—हिंदी, गुजराती आदि में साहित्य तैयार करने के साथ-साथ अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में अच्छे अनुवादकों द्वारा भाषांतर कर उसे व्यापक रूप में प्रचारित-प्रसारित करना होगा। साथ ही साथ ऐसे सक्षम, दक्ष, शिक्षित एवं कार्यक्षम व्यक्तियों को तैयार करना होगा जो इस योजना के साथ जुड़ें और व्यवस्था, प्रबंधन, विपणन आदि को आधुनिक विधाओं के साथ संपादित कर सकें।

समाज के उन उदारमना भामाशाहों को भी प्रोत्साहित करना होगा। उन्हें 'आगम वाणी' के माहात्म्य को समझाना होगा। इसकी निष्पत्ति से जैन शासन की होने वाली प्रभावना का बोध भी कराना होगा।

यह ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य है कि जैन समाज के सभी दायित्वशील लोग समयबद्ध और सुनियोजित योजना के साथ इस दिशा में प्रयत्नशील हों। सफलता की आशा तभी की जा सकती है। ❖

किसी को कैसे समझाता कि मैं 'मास्टर' नहीं, वैज्ञानिक हूं और वह भी सामाजिक वानिकी का। वैज्ञानिक जिसमें भाषण और राशन के अलावा कार भी है, जिस पर 'सर' लगाकर सीधा सरकार से संपर्क हो जाता है, क्योंकि मेरा 'सब्जैक्ट' बीस सूत्री कार्यक्रम के आस-पास या पर्यावरण की परिधि से लेकर केंद्र तक जुड़ा है। इसलिए मुझे कुछ दिनों घर पर रहने की फुर्सत नहीं थी, परंतु 'बीवी' सब समझती थी। पर, चुप रही और उसी चुप्पी को हम भी समझकर 'मास्टर' की 'मास्टरी' को बेकार कर गए और फिर चल उड़ जा रे पंछी,
अब यह देश हुआ बेगाना।

दो अंकों में समाप्य
कहानी
की अंतिम कड़ी

पलायन तो उड़ना होता है

❋ भगवती नौटियाल

कभी-कभी मुझे अपने पहाड़ पर ही तरस आया। वहां इस तरह खाने-कमाने का धंधा ही नहीं। वो भी कोई जगह है। यहां तो रास्ते चलते भी कमाई। देखा, कल का छोकरा महीने में पांच-सात हजार पर हाथ मारता है। मैं बिजली के झटके की तरह ये सब बातें सोच ही रहा था कि नसीरुद्दीन बोला—बाबूजी ऐसा नहीं है। हमने आपसे पचास रुपए ज्यादा लिए न। तुम बोलता होगा, सब हमारी जेब में है। ऐसा नहीं होता। हमको तीस रुपए रेलवे के लोगों को देना पड़ता है। हमको बीस-पचीस से ज्यादा नहीं मिलता। फिर चाय-पानी अलग और फिर ऐसा कमाई का पैसा ऐसे ही चला जाता है। हम बोले—तुम्हें 'टिकट' (रिजर्वेशन) मिलने में दिक्कत नहीं होती। बोला—नहीं बाबूजी। बोलना मत, ये सब रेलवे के बाबू लोगों का कमीशन खाने का धंधा भी तो है। नहीं तो साहब तनख्वाह में तो ये भूखा मर जाएंगे। फिर इनका 'स्टैनर (स्टैंडर्ड) देखो। सब चलता है बाबूजी। ये भी, हम भी—क्या बुरा करता है। तुम्हारा काम भी बन गया, हमारा भी। रेलवे का भी। थोड़ा बहुत परेशानी तो सबको होता है। वाकई हम समझते जा रहे थे।

तब तक मेरे साथी कहने लगे 'रियली' डॉ. नौटियाल—'यू आर लक्की'। नहीं तो ऐसे ही कोई हाथों-हाथ 'रिजर्वेशन' मिलता है। खैर, अगले दिन गाड़ी ने सीटी दी और हम गीली आंखों से विदा हो गए और टांग पसार कर खिड़की से हवेली, झोंपड़ी, पत्थर, रोड़ी, पेड़-पौधे देखते हुए भी अनदेखे से चले जा रहे थे। छक...छक...छक....।

न तो भिखमंगा भूखा रह सकता है, न तो छुटभय्या रईस अपने ऐशो-आराम को खो सकते हैं। झाड़ू वाला, पालिश वाला, जूठन वाले, टाफी, चाकलेट, सिगरेट, पान-बीड़ी, केले, थैले, पूरी-कचौड़ी जैसे—सब ट्रेन के साथ चल रहे हों। रेलगाड़ी 'गाड़ी' तो क्या, शहर बाजार सा बना था। उसकी पटरी के बीच और बाहर वही कोयला बीनने वाले अपने गत्ते की हवेलियों में पैबंद लगाकर वैसे ही रह रहे थे, जैसे मेरे श्रीनगर और तेरे नैनीताल शहर के बाहर पहाड़ियों पर उन गांवों की गंदी गलियों में रहते हैं। जहां 'हास्पिटल' के 'बोर्ड', पानी के सूखे नलों और बगैर 'मास्टर' और बगैर छत के स्कूल रखे हुए थे/हैं।

जैसे-तैसे बेंगलुरू पहुंचा। बेंगलुरू क्या था—मुझे

तो लंदन लगा। हरे पत्तों के बीच फूलों का गुलदस्ता जैसा शहर। बगीचों का शहर। मुझे लगा हिमालय के जंगलों की पुरातन खूबसूरती, यहीं ये लोग जैसे चुराकर लाए हों। परंतु, चुराकर क्यों लाते? जूड़े पर फूलों की माला। फूलों के गुच्छे और फिर उनके बगीचे।

आरण्य प्रधान संस्कृति को देखकर मैं ऐसा चौंका कि बस क्या कहूं। जहां खूबसूरत होने की संस्कृति हो, वहां खूबसूरती से कमाने की कला भी आती है। यहां तो फूलों के खूबसूरत बगीचे हैं। करीने से लगे नारियल के पेड़, अंगूर की झुरमुट और पूरब के छोटे मंदिर। पश्चिम के सिनेमाघर का साया। फिर भी बौने से वे मंदिर अंगद के पांव बता सकते हैं। तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानता। बहरहाल सामाजिक वानिकी के 'रिक्रियेशनल' 'कंपोनेंट' को यहीं फलीभूत होते देखा।

सुनते हैं यहां सामाजिक वानिकी तब से चल रही है, जब से न तो सामाजिक वानिकी का नाम था, न उसका निदेशालय। सोच ही रहा था कि 'स्टेशन' पर खड़े कुलियों और 'ऑटोरिक्शा' वालों ने धर दबोचा। मुझे तो मुराद मिली थी। बेंगलुरू भी मिल गया था और मुझे 'रिसीव' करने वाले 'रिक्शे' वाले। तुरंत, होटल में ठहरने को कहा और पांच मिनट में पांच रुपए के होटल में दाखिल हुए। फिर तो हम ऐसे जमे कि हमें अपनी पुरानी 'मास्टरी' की याद आते ही अपने बेचारे 'मास्टर' बाप और अपने खुद के मास्टरों और साथी 'मास्टरों' पर तरस आने लगा। वह भी कोई नौकरी थी। किसी को कैसे समझाता कि मैं 'मास्टर' नहीं, वैज्ञानिक हूं और वह भी सामाजिक वानिकी का। वैज्ञानिक जिसमें भाषण और राशन के अलावा कार भी है, जिस पर 'सर' लगाकर सीधा सरकार से संपर्क हो जाता है, क्योंकि मेरा 'सब्जैक्ट' बीस सूत्री कार्यक्रम के आस-पास या पर्यावरण की परिधि से लेकर केंद्र तक जुड़ा है। इसलिए मुझे कुछ दिनों घर पर रहने की फुर्सत नहीं थी, परंतु 'बीवी' सब समझती थी। पर, चुप रही और उसी चुप्पी को हम भी समझकर 'मास्टर' की 'मास्टरी' को बेकार कर गए और फिर चल उड़ जा रे पंछी, अब यह देश हुआ बेगाना।

जैसे-तैसे करके हमने 'बैंक' में दाखिल किया और सबेरे दस बजे से साढे पांच बजे तक की नई व्यवस्था के द्वार खोले। द्वार क्या खोले, किसी तरह से 'बस-स्टाप' पर बस रुकने का इंतजार और फिर 'बस' के दरवाजे पर पांव का अंगूठा टिकाने के लिए दो वर्ग इंच जगह और पकड़ने के लिए तीन वर्ग इंच जगह—'बस' तो पहले की आदी थी। हम भी चढ़ती गाड़ी से उतरना और चढ़ना ऐसा सीखे कि दुनिया की आबादी कितनी ही बढ़ जाए, हम अपने बुढ़ापे तक चलते पहिए पर भी चढ़ना सीख जाएंगे।

अब तो मानो हम मशीन हो गए। मुकद्दर के सिकंदर हो गए थे। 'ओलिंपिक' भी अभी शुरू होना था। उधर अमेरिका के 'मैडल' गोल्ड हो रहे थे। कोरिया जैसा देश भी 'गोल्ड' पर 'गोल्ड' और मेरा सवा अरब की आबादी का देश 'कोल्ड' पर 'कोल्ड'। बस अपने घर की व्यवस्था को नचाने के लिए मैंने शर्म का बहाना ढूंढ़ा और 'बीवी' से झगड़ बैठा। 'टी.वी.' देखो, क्यों देखो, क्या फायदा। तुम्हारे देश ने कोई एक 'मैडल' भी जीता अब तक। मैं 'बीवी' पर बरस पड़ा। अरे तूने नारायणसिंह वोडा को नहीं देखा जो चार-पांच क्विंटल वजन गेंद की तरह उठाता था। उफनती अलकनंदा को कई बार फलां धुनार (मछवारे) ने कितनी ही बार पार किया था। जिम्नास्टिक में समू वेडा (वादी) क्या कम था। उसकी औरत परात पर तलवार पर नाचती थी। वो पचास फुट ऊंचे डंडे की नोक पर खड़ा होता था। उधर बावले की रस्सी पर चोटी से घाटी तक वर्त्याखुंट खेलता था। फलां गूजर को एक बार मैंने भैंस को कंधे पर उठाते देखा। अरे, घूमने में भी जब एक 'मैडल' नहीं आ सका, तो क्या करेगी 'टी.वी.' देख कर। उन लोगों को देखो जो एक-एक घंटे में बारह-पंद्रह किलोमीटर इस धार से उस धार तक चले जाते हैं। परंतु, बस। अरे तैराकी सीखनी है, तो मछवारे से सीखो। घूमने, चलने, दौड़ने की कला सीखनी है, तो पहाड़ों पर जाओ आदमी ढूंढ़ने। अब तो बस 'क्रिकेट' भी होगा, तो बैठे रहो 'टी.वी.' के सामने। ऑफिस में भी चपरासी साहब को 'स्कोर' सुना रहा है। जैसे 'क्रिकेट' ऐसा हो गया हो कि बस ऑफिस चल ही नहीं सकता। 'हॉकी' तो ऐसे गायब हुई, जैसे गधे के सिर से सींग। मैं तो कहता हूं, एक भाषण 'कंपीटीशन' रखो—'ओलिंपिक' में।

चिपको शुरू हुआ मंडल में और भाषण से पहुंचते-पहुंचते गया सात समुंदर पार। यहां पर क्या हुआ, जितना

कागज चिपको के लेख-भाषणों पर खर्च हुए, उसके लिए भी पेड़ नहीं लगे। एक अंतरिक्ष यात्री गया तो पहला भारतीय हो गया। बचेंद्री तो हमारे विश्वविद्यालय से ही निकली और पहली भारतीय हो गई। उस पर भी भाषण अरे 'ओलिंपिक' में कहा गया—पहला भारतीय, वह भी पहला, चौथा। उस पर भी भाषण। 'बीवी' ने बच्चों से कह दिया 'टी.वी.' लाएंगे। तो ऑफिस जाते समय गुब्बारे की जगह 'टी.वी.' की फरमाइश। ऑफिस से जाते वक्त बच्चों का गुस्सा—'टी.वी.' नहीं लाए। 'होमवर्क' नहीं करेंगे। पहले 'टी.वी.' लाओ। खाना नहीं खाएंगे, 'टी.वी.' लाओ।

अब सोचो क्या किया मैंने यहां आकर? यहां क्या आया 'टी.वी.', शुक्र है—यहां अभी इतनी गर्मी नहीं पड़ी, नहीं तो 'फ्रिज' भी मेरे लिए एक सिरदर्द हो जाता। वैसे घर में पड़ोसी से 'फ्रिज' की बात होने लगी है। खैर, जैसे भी है—'बाथरूम' में जाकर सोचता हूं, देश ने वाकई प्रगति कर ली है। जब डेढ़ सौ टी.वी. 'ट्रांसमीटर' हैं, तो 'टी.वी.' की फैक्ट्रियां कितनी होंगी और फिर दुकानें कितनी और फिर खरीददार कितने और फिर कितना पैसा? मैंने अपने विकासशील देश की परिभाषा बदल दी और अमेरिका को गाली देने लगा कि उसको हमारी प्रगति रास नहीं आती। अरे अमेरिका, तेरे यहां एक ही 'टी.वी.' है। हमारे यहां तो 'टी.वी.' भी है और 'टी.बी' भी। बता तूं गरीब, कि मैं गरीब? वैसे दूध, सब्जी की कटौती कर 'टी.वी.' खरीदने की योजना बन रही है। तब 'टी.बी.' नहीं होगी तो क्या होगी?

तेज रफ्तार से जमने को कोशिश कर ही रहे थे कि 'टेलीग्राम'। 'फादर सीरियस।' फिर दूसरा, 'फादर एक्सपायर्ड।' सारी रही-सही रफ्तार जैसे रुक गई थी। वक्त का ऊंट करवट बदलने पर लग गया। दौड़ कर रेलवे स्टेशन गया। 'रिजर्वेशन' हाथों-हाथ मिल गया। सबेरे बोरिया बिस्तर लेकर स्टेशन पहुंचा तो मालूम हुआ कि 'ट्रेन कैंसिल।' सोचने लगा, मेरे उस स्वर्गीय मास्टर बाप के बिलखते बच्चों ने क्या बिगाड़ा था जो अपनी छोटी, पतली होती जा रही रोटियों पर नमक मलते-मलते अब किसी सहारे की तलाश में आंसू बहा रहे थे। मेरे बाप के रखे पंद्रह साल पुराने रेडियो पर मेरी बूढ़ी मां ने भी ट्रेन कैंसिल होने की खबर सुनी। मैं, यानी कि बाप का सबसे बड़ा लड़का न अंतिम दर्शन कर सका, न लकड़ी दे सका, न कंधा दे सका और न ही अब सर मुंडाने, क्रियाकर्म में बैठ सकता था। मेरी मां को मेरी, मुझे घर जाने की और नई जगह पर बच्चों की चिंता। चिंताओं के ताने-बाने ऐसे बुने कि जाल बुनने वाले और खुद जाल के ताने-बाने आपस में ही उलझ गए। सोचा हवाई जहाज से ही किसी तरह पहुंच जाऊं। पूछा, कोई गुंजाइश नहीं। फिर ऊंची पोस्ट पर था, जोर लगाया। मिलेगा, मगर दूसरे नाम से। वह भी छः सौ रुपए अतिरिक्त। यानी बारह सौ के अठारह सौ। फिर सोचा वक्त बुरा है, प्लेन का अपहरण हो गया—तो न मेरे नाम का टिकट, न कुछ। मेरा तो कहीं भी पता नहीं चलेगा कि श्रीनगर गया कि दुबई। आखिर आदमी आदमी होता है। मेरे इर्द-गिर्द ऑफिस के साथी 'ऑफीसर' मेरी परेशानी में परेशान थे। उन्होंने व्यवस्था बनाई कि, मुंबई चले जाओ—बस से और फिर मुंबई से दिल्ली, दिल्ली से ऋषिकेश, ऋषिकेश से श्रीनगर। 'प्लान' बना और फिर एक सौ साठ रुपए का टिकट दो सौ में खरीदकर 'वीडिओ कोच' से चौबीस घंटे की जगह अठाईस घंटे में मुंबई पहुंचा। टप-टप गिरते मेरे आंसुओं को देख कर श्रीलंका से भाग कर आए एक तमिल साथी ने मेरा साथ दिया था। मेरे गम और परेशानी में वही 'टाइगर लिबरेशन फ्रंट' का खूंखार कातिल न जाने क्यों मुझसे बेहद घुलमिल गया था। श्रीलंका में हो रहे नर-संहार की कहानी जैसे रामायण-महाभारत की कथा लग रही थी और अपने यथार्थ में मैं दूसरे यथार्थ को कल्पना समझकर एक फिल्म की पटकथा को सोचते-सोचते मुंबई पहुंच गया था। टैक्सी वाले को बीस रुपए दिए थे। उसने मेरे ही आंखों के सामने उसका दो रुपए का नोट बनाकर जहां अपनी ईमानदारी और मेरी हड़बड़ाहट में मेरी गलती को स्वीकार करवाया था, वहीं पर रेलवे स्टेशन पर मुझे ठीक एक घंटे पहले पहुंचा दिया था।

मैं खुश था। मंजिल के करीब आ रहा था। दिल्ली से बेंगलुरू का पुराना अनुभव टिकट न मिलने का और फिर ठीक एक वर्ष पहले इसी स्टेशन पर 'इंटरव्यू' के लिए आने पर दिल्ली जाते हुए। टिकट का मिलना मुझे कतई मुश्किल नहीं लग रहा था। खिड़की पर गया, गिड़गिड़ाया। 'रिजर्वेशन' 'कंपलीट'। फिर 'फादर एक्सपायर्ड' का तार

शेष पृष्ठ 58 पर

जगदीश गुप्त की कविताएं

•

मध्यस्थ

जीभ की मृदु नोक को ऊपर उठा
जब दाढ़ के तीखे कगारे बार-बार टटोलता हूं मैं—
और जब सहसा 'कैनाइन टीथ' छू जाते
सिहर जाती देह
निस्संदेह
लगता मुझे जैसे अभी तक पशु ही बना हूं मैं।

किंतु जब पलकें झुका, दृग मूंद
झांकता हूं हृदय के उस पार,
मन के गहन लोकों में—
तुम्हारे स्नेह के आलोक से पूरित,

उधर जाते अनेकों द्वार—अनगिन द्वार
जिनकी आड़ से झाईं तुम्हारी झांकती,
तिरती
बिखरती
फैल जाती ज्योति के उजले कुहासे-सी

चेतना की उस मधुर स्वप्निल कुहा में
मुझे लगता देवता हूं मैं।
तुम बनो मध्यस्थ
बतलाओ कि क्या हूं मैं।

•

पानी गहरा है

पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूं।
लहरों में अनचाहे लहर-लहर जाता हूं।

कोलाहल धूल भरा तट कब का छोड़ चुका।
मन की दुर्बलताओं के बंधन तोड़ चुका।
पर जाने क्या है—
जब गहरे में चलने को होता हूं
ठहर-ठहर जाता हूं।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूं।

झिलमिल जल की सतहों बीच सत्य दीख रहा।
उसमें घुल जाने को।
अपने ही पाने को।
सांस-सांस तड़प रही रोम-रोम चीख रहा।
माना यह तत्त्वों की, मिट्टी की, जल की है।
मन की तुलना में पर देह बहुत हलकी है।
इसको तट ही प्रिय है, चाह नहीं तल की है।
इसके निर्मम हलकेपन से ही बंध-बंधा,
जल के आवर्तन में छहर-छहर जाता हूं।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूं। ❖

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा द्वारा जसोल में तेरापंथी सभा प्रतिनिधि सम्मेलन संपन्न

तेरापंथ समाज के लिए महासभा मां तुल्य

—आचार्यश्री महाश्रमण

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा द्वारा आयोजित **'तेरापंथ सभा प्रतिनिधि सम्मेलन'** आचार्यश्री महाश्रमणजी के सान्निध्य में जसोल में दिनांक 28, 29 व 30 जुलाई, 2012 को संपन्न हुआ। साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के दिशा निर्देशन में संपन्न इस सम्मेलन में देशभर की 224 तेरापंथी सभाओं के लगभग 800 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन के विभिन्न सत्रों में आचार्यश्री महाश्रमणजी सहित साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी, मंत्रीमुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं', मुख्यनियोजिका साध्वीश्री विश्रुतविभाजी, प्रो. मुनि महेंद्रकुमारजी, मुनिश्री कुमारश्रमणजी, मुनिश्री विश्रुतकुमारजी, मुनिश्री उदितकुमारजी, मुनिश्री योगेशकुमारजी एवं महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू, प्रधान न्यासी श्री कमलकुमार दूगड़, निवर्तमान अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया, उपाध्यक्ष श्री विनोदकुमार बैद, श्री सुकनराज परमार, श्री विमल सुराणा, महामंत्री श्री बिनोदकुमार चोरड़िया, सहमंत्री श्री बजरंगकुमार सेठिया; श्री जी. भूपेंद्र मूथा और अनेक सभा प्रतिनिधियों ने विभिन्न सत्रों में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए।

प्रतिनिधि सम्मेलन के उद्‌घाटन सत्र का प्रारंभ पूज्यप्रवर के मंगल मंत्रोच्चार से हुआ। प्रोजेक्टर के माध्यम से सभा गीत प्रदर्शित किया गया। तदुपरांत तेरापंथी सभा, जसोल के अध्यक्ष श्री खूबचंद भंसाली तथा 'आचार्यश्री महाश्रमण प्रवास व्यवस्था समिति', जसोल के संयोजक श्री गौतमचंद सालेचा ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। महासभा के उपाध्यक्ष श्री विनोदकुमार बैद ने अपने संयोजकीय वक्तव्य में सम्मेलन के महत्त्व को दर्शाते हुए कहा कि सभाओं की प्रगति की समीक्षा करना, सुषुप्त सभाओं में जागृति लाना और सशक्त सभाओं को प्रगति के प्रति अधिक सचेष्ट करना इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य है।

महासभा के अध्यक्ष ***श्री हीरालाल मालू*** एवं प्रधान न्यासी ***श्री कमलकुमार दूगड़*** ने देश के विभिन्न क्षेत्रों से आए प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए अपने-अपने विचार रखे।

पावन पाथेय प्रदान करते हुए **आचार्यश्री महाश्रमणजी** ने कहा कि महासभा द्वारा वर्ष में एक बार होने वाले इस सम्मेलन में सभा प्रतिनिधियों का मिलन तो होता ही है, अनेक प्रकार की जानकारियां, विचार-विनिमय और मार्गदर्शन प्राप्त हो जाता है। यह सम्मेलन तेरापंथ समुदाय का सम्मेलन है। हमारी दृष्टि में सभाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि ये स्थानीय सभाएं हैं और यही इनकी विशिष्टता है। महासभा तेरापंथ समाज के लिए मां तुल्य है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और जागरूक संस्था है। समाज की अनेक गतिविधियां महासभा द्वारा संचालित होती हैं और महासभा के सभी कार्यकर्ताओं में कार्य के प्रति लगन व समर्पण का भाव रहता है।

पूज्यप्रवर ने फरमाया कि हमारे धर्मसंघ में गुरु की आज्ञा को सर्वोपरि माना गया है। आध्यात्मिक रूप से श्रावक समाज भी गुरु की निश्रा में ही होता है। अतः सभा के पदाधिकारियों में 'श्रावकत्व' भी रहना चाहिए। महासभा सामाजिक गतिविधियों पर भी ध्यान देती है। फिर भी इस अवसर पर आचार्यवर ने धर्म के प्रति श्रद्धा, वीतरागता के प्रति श्रद्धा, यथार्थता के प्रति श्रद्धा व गतिविधियों के प्रति समर्पण भावना रखने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि हमारे धर्मसंघ में शासन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। अतः संघहित के लिए व्यक्तिगत हितों का परित्याग करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए।

पूज्यप्रवर ने कहा कि—जैन समाज में साधु-साध्वियों का विशिष्ट महत्त्व है, पर साथ ही साथ श्रावक-श्राविकाओं का भी बहुत महत्त्व है। श्रावक होना गौरव की स्थिति है। श्रावक की अर्हताओं के बारे में उन्होंने कहा कि—श्रावक में श्रद्धा, विवेक, त्याग-प्रत्याख्यान होना ही चाहिए। श्रद्धा अपने आप में बड़ा गुण है। श्रावक की श्रद्धा का मूल आधार वीतरागता है। अतः श्रावक को वीतरागता के प्रति आस्थावान रहने का प्रयास करना चाहिए।

पूज्यप्रवर ने फरमाया कि श्रावकत्व की विशिष्टता इस बात में है कि उसमें साधु बनने की भावना रहे। भावना

होने पर मौका भी मिल जाता है और राह भी मिल जाती है। उन्होंने कहा कि—श्रावक खाने का संयम करें, रात्रि- भोजन का त्याग करें! जमीकंद का त्याग करें। व्यसनों का त्याग करें।

उन्होंने कहा कि श्रद्धा के साथ ज्ञान का होना भी महत्त्वपूर्ण है। श्रद्धा का आधार ज्ञान ही होना चाहिए। महासभा द्वारा संचालित ज्ञानशाला और उपासक श्रेणी को धर्मसंघ का एक सुंदर उपक्रम बताते हुए उन्होंने जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय को शिक्षा का अच्छा माध्यम बताया।

आचार्यवर ने मितव्ययिता की प्रेरणा देते हुए कहा कि—श्रावक समाज अनावश्यक फिजूलखर्ची न करे और धार्मिक संस्थाओं में भी फिजूलखर्च को रोके। अधिवेशनों, सम्मेलनों में मितव्ययिता रखे। नामवृत्ति पर संयम की प्रेरणा देते हुए कहा कि—प्रायोजकों को नाम की अति भावना नहीं रखनी चाहिए। नाम की भावना से पाप-कर्म का बंध होता है। समाज के लिए अर्थ पवित्र वस्तु है, अतः उसका अपव्यय करना उसका अपमान है। महासभा के प्रभारी मुनि विश्रुतकुमारजी के बारे में पूज्यवर ने फरमाया कि—ये बड़े लगन व निष्ठा वाले संत हैं और अच्छी सूझ-बूझ है। महासभा के आध्यात्मिक प्रभारी होने के नाते अपना समय लगाते हैं और ध्यान भी देते हैं। मुनिश्री को आशीर्वाद देते हुए कहा कि—ये खूब अच्छे ढंग से काम करें और विकास करें।

इस अवसर पर **साध्वीप्रमुखाश्री** ने कहा कि—अधिवेशन एक तरह से आईना होता है, जिसमें विगत के प्रतिबिंबों को देखा जा सकता है, समीक्षा की जा सकती है। साथ ही आगामी कार्यक्रमों का निर्धारण भी होता है। उन्होंने कहा कि श्रावक में तत्त्वज्ञान जितना पुष्ट होगा, विकसित होगा—उनकी जीवन शैली में उसी अनुरूप अपने-आप परिवर्तन आता जाएगा। जो श्रावक श्रद्धाशील, ज्ञानवान और चरित्र-संपन्न हैं, वे दर्पण की तरह निर्मल चित्त वाले बन सकते हैं। वे स्वयं के साथ अपने परिवार व समाज का भी कल्याण कर सकते हैं। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार के श्रावक बताए गए हैं—1. दर्पण के समान, 2. पताका के समान, 3. स्थानों के समान, 4. खर-कंटक के समान। उन्होंने कहा कि—श्रद्धा और संयम की साधना तथा त्याग के विकास के साथ-साथ श्रावक में मितव्ययिता भी होनी चाहिए। सभी श्रावक आत्मलोचन का लक्ष्य बनाएं।

उपस्थित प्रतिनिधियों को **मंत्रीमुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं'** ने अपना उद्‌बोधन प्रदान करते हुए कहा कि—धर्म दो प्रकार के हैं—आचरणमय धर्म और उपासनामय धर्म। व्यक्ति के आचरण में भी धर्म आना चाहिए और उसके व्यवहार में भी धर्म बोले। वह नित्य उपासना करने वाला भी बने। उपासना व्यक्ति के आंतरिक गुणों की पहचान कराने का उपक्रम है। व्यक्ति जब उपासना करने बैठता है, तो वह बाहरी प्रवृत्तियों से हट कर अंतर्मुखी बनता है। अंतर्मुखी बनने पर ही वह अपने गुणों की पहचान कर सकेगा। जीवंत श्रावक वही है, जिसके जीवन व व्यवहार में निरंतर धर्म की प्रक्रिया बनी रहे। श्रावक अपने नियम, अपनी संस्कृति और अपनी धार्मिक सभ्यता को सदैव आगे रखे। श्रावक ऐसा उपक्रम करे कि जिससे धर्मसंघ की गरिमा बढ़े।

मुख्यनियोजिका साध्वीश्री विश्रुतविभाजी ने कहा कि—तेरापंथी महासभा आज तेरापंथ समाज में व्यक्तित्व निर्माण की संस्था प्रतीत हो रही है। इसके द्वारा संचालित ज्ञानशाला के माध्यम से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उपासक श्रेणी के माध्यम से भी धर्म-प्रभावना का कार्य हो रहा है। मेधावी छात्र प्रोत्साहन परियोजना द्वारा भी समाज के छात्रों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जिस धर्मसंघ के किशोर-किशोरियां संस्कारी होते हैं—वही धर्मसंघ संस्कारी होता है।

प्रो. मुनिश्री महेंद्रकुमारजी ने 'धर्मसंघ और हमारा दायित्व' विषय पर अपने वक्तव्य में कहा कि—धर्मसंघ के प्रति अपने दायित्व को समझने के लिए हमें पहले अपने धर्मसंघ को भी समझना होगा। दायित्व के साथ, अध्यात्म व संघ की मर्यादाओं के प्रति जागरूकता होनी जरूरी है।

मुनिश्री कुमारश्रमणजी ने **'कैसे बनें श्रावक कार्यकर्ता'** विषय पर उद्‌बोधन प्रदान करते हुए बताया कि—श्रावक वह होता है जो श्रमणों की उपासना करता हो। श्रावक और साधु में कोई अंतर नहीं है। श्रावक और साधु दोनों ही रत्नों की माला है। दोनों ने ही व्रत को स्वीकार किया है। एक ने महाव्रत को स्वीकार किया है और दूसरे ने अणुव्रत को स्वीकार किया है। एक बड़ी माला है और एक छोटी माला। यदि कोई श्रावक कार्यकर्ता बनना चाहे तो उसके लिए उसे 'व्रती' बनना पड़ेगा, अर्थात् आचारवान बनना पड़ेगा। श्रावक का आचार है—साधु-संतों की सेवा करना। मुनिश्री ने श्रावक के संदर्भ में कहा कि—श्रावक कार्यकर्ता को आचारवान होना चाहिए, प्रामाणिक होना चाहिए। वह विनम्र हो, व्यवहार में उदारता हो, परिश्रमी हो, मेहनती हो और जिसमें समय और अर्थ—दोनों ही देने की क्षमता हो और जिसमें साधर्मिक वात्सल्य की भावना हो।

मुनिश्री विश्रुतकुमारजी ने अपने उद्‌बोधन में कहा—लोग पूछते हैं कि महासभा के पास बहुत कार्य हैं, वह इतने कार्यों को कैसे संपादित कर पाएगी? मैं उनसे कहना चाहूंगा—महासभा के पास केवल कार्य ही नहीं है, उसके पास परमपावन आचार्यवर का वरदहस्त भी है, शुभदृष्टि भी है। इसी कारण वह सारे दायित्वों का कुशलतमूर्वक निर्वहन कर रही है। महासभा के पास सक्षम 'टीम' है, जो किसी भी कार्य को सफलता तक पहुंचा सकती है। इतना ही नहीं, महासभा के साथ लगभग पांच सौ स्थानीय सभाएं हैं, जो कंधे से कंधा मिला कर हर कार्य में सहयोग कर रही हैं।

मुनिश्री उदितकुमारजी ने ज्ञानशाला के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि—हमारे धर्मसंघ में जितनी भी प्रवृत्तियां हैं, उसकी एक नियामक संस्था होती है और सहयोगी के रूप में अन्य संस्थाएं भी कार्य करती हैं। **ज्ञानशाला** महासभा और स्थानीय सभाओं की मूल प्रवृत्ति है। वह अबाध चलती रहे। ज्ञानशाला के संचालन में कोई समस्या न आए, इस पर विचार किया जाना आवश्यक है।

मुनिश्री योगेशकुमारजी ने उपासक श्रेणी के संदर्भ में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए बताया कि—उपासक श्रेणी में बदलाव आ रहा है और जो विकास हो रहा है—वह प्रशंसनीय है। हमारे उपासक जब भी किसी क्षेत्र में जाते हैं तो केवल तेरापंथी समाज के लोगों से ही नहीं मिलते हैं, बल्कि दूसरे समाज के लोगों से भी मिलते हैं और उन्हें तेरापंथ धर्मसंघ के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। वे अपना अच्छा प्रभाव छोड़ते हैं। धर्माराधना के साथ-साथ कई बार सामाजिक समस्याओं का भी निराकरण करते हैं।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने कहा कि—धर्मसंघ हमारा आश्वास व विश्वास है। हम धर्मसंघ की सेवा कर स्वयं को गौरवास्पद बनाएं।

महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू ने आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण विचार रखे और बताया कि 'आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी' समारोह चार चरणों में आयोज़ित किए जाएंगे। इस शताब्दी समारोह के अंतर्गत अणुव्रत के प्रचार-प्रसार, आचार्यश्री तुलसी के साहित्य का अनुवाद एवं उसका प्रकाशन, शताब्दी घोष तथा आचार्यश्री तुलसी के जीवन दर्शन पर आधारित कार्यक्रमों पर विचार हो रहा है। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी संग्रहालय के लिए सभाओं के माध्यम से आचार्यश्री तुलसी के संस्मरणों, चित्रों तथा प्रदेशों में रथयात्रा के माध्यम से आचार्यश्री तुलसी की झांकी प्रस्तुत करने की योजना, स्वागत समिति आदि अनेक बिंदुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने इसी दौरान 'दक्षिण कोलकाता' को **श्रेष्ठ सभा** तथा सूरत व गदग सभा को **विशिष्ट सभा** के रूप में घोषित किया।

उन्होंने सभाओं के सदस्यों से प्राप्त सुझावों के बारे में कहा कि—सभी सभाओं में संविधान में एकरूपता होने से कोई समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। सभाओं में अध्यक्ष की अर्हता एवं उम्र-सीमा निर्धारित करने के संदर्भ में उन्होंने कहा कि—इसके लिए महासभा के सभी पदाधिकारी विचार-विमर्श करके शीघ्र ही निर्णय लेंगे।

संगठन यात्रा के संदर्भ में अध्यक्ष महोदय ने उपस्थित सभा के सदस्यों को आश्वासन दिया कि महासभा के सभी पदाधिकारी छोटे-छोटे क्षेत्रों से अपनी संगठन यात्रा प्रारंभ करेंगे एवं उनकी सार-संभाल करेंगे।

महासभा के प्रधान न्यासी श्री कमलकुमार दूगड़ ने आचार्यश्री महाप्रज्ञ स्मारक स्थल व महासभा शताब्दी वर्ष पर अपनी प्रस्तुति 'पावर प्वायंट' के माध्यम से प्रदान की और कहा कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी स्मारक स्थल पर गतिविधियों के अंतर्गत आध्यात्मिक उपासना, आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अवदानों का प्रचार-प्रसार एवं संचालन, उनकी स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए विभिन्न उपक्रमों का संचालन, आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की आंतरिक करुणा एवं भावना तथा मानव सेवा से संबंधित विभिन्न कार्यों का संचालन किया जाएगा। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की करुणाशीलता को जन समुदाय में चिरस्थाई बनाने हेतु एक स्थाई कोष के निर्माण का चिंतन भी किया गया है। इस कोष को अक्षुण्ण रखते हुए इसकी आय को मानव सेवा कार्यों, जैसे कि—शिक्षा-सहायता, चिकित्सा-सहायता, रोजगार-सहायता, प्राकृतिक आपदा इत्यादि के मद में सहयोग किया जाएगा। उन्होंने उपस्थित सदस्यों से इस परियोजना में सहयोग एवं सहभागिता हेतु आह्वान किया।

महासभा शताब्दी वर्ष के संदर्भ में प्रधान न्यासी श्री कमलकुमार दूगड़ ने बताया कि शताब्दी वर्ष के इस गौरवशाली अवसर पर तेरापंथ भवन निर्माण परियोजना की परिकल्पना की गई है। उन्होंने कहा कि भगवान महावीर के सिद्धांतों—सत्य, अहिंसा और अनेकांत को जीवन व्यवहार में उतारने की आज नितांत अपेक्षा है। स्वप्नदर्शी आचार्यों

की प्राण ऊर्जा से सिंचित इस धर्मसंघ को ऊंचाई प्रदान करने और स्वस्थ समाज के निर्माण में निरंतरता बनाए रखने की अपेक्षा है और अपेक्षा उन प्रयासों को घनीभूत करने की भी है। महासभा शताब्दी वर्ष के प्रसंग पर प्रस्तावित इस योजना में भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों में एक सौ भवनों का निर्माण समाज के भामाशाहों के सहयोग से किया जाएगा।

महासभा के निवर्तमान अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने सभाओं के सम्यक् संचालन पर 'पावर प्वायंट' के माध्यम से अपनी प्रस्तुति प्रदान करते हुए बताया कि आज पूरे देश व विदेश में लगभग पांच सौ तेरापंथी सभाएं धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, सामाजिक, साहित्यिक और मानव सेवा के क्षेत्र में संपूर्ण निष्ठा और समर्पण भाव से कार्य कर रही हैं। अणुव्रत, अहिंसा-यात्रा, संस्कार-निर्माण आदि के कार्यक्रमों को संचालित कर इन सभाओं ने देश के हर वर्ग के लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। उन्होंने कहा कि सभाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति तभी कर सकती हैं, जब वे सम्यक् रूप से संचालित हों। सभाओं की सफलता कुशल नेतृत्व पर निर्भर है, जिसके लिए दूरदृष्टि, संगठन व उसके सिद्धांतों के प्रति आस्था, सौहार्द और समन्वय की भावना, कुशल संप्रेषण और सहकर्मियों के साथ सद्भाव के गुण का होना आवश्यक है।

महासभा के उपाध्यक्ष व सहभागिता योजना के राष्ट्रीय प्रभारी श्री किशनलाल डागलिया ने सहभागिता योजना के उद्देश्यों एवं इसके प्रारूप की जानकारी प्रदान करते हुए कहा कि इस योजना में एकत्रित राशि का उपयोग सभा-संपोषण के साथ-साथ संस्कार-निर्माण की गतिविधियों तथा धर्मसंघ की विभिन्न प्रवृत्तियों के सम्यक् संचालन हेतु किया जाएगा।

महासभा के उपाध्यक्ष व जैन भारती के संयोजक श्री महेंद्रकुमार धाड़ीवाल ने जैन भारती के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि हो रही है, किंतु यह संख्या और बढ़नी चाहिए और इसके लिए हम सभी को मिल कर प्रयास करना होगा। उन्होंने कहा कि जैन भारती का अहिंसा तत्त्व पर आधारित विशेषांक शीघ्र ही प्रकाशित किया जाएगा। इसके लिए सभी सभाएं स्थानीय स्तर पर प्रयास करके अधिकाधिक विज्ञापन संग्रह करके अपना योगदान दें।

उपाध्यक्ष व तेरापंथी सभा प्रतिनिधि सम्मेलन के संयोजक श्री विनोद बैद ने प्रतिनिधि सम्मेलन की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हुए कहा कि दो सौ चौबीस सभाओं के लगभग आठ सौ प्रतिनिधियों की उपस्थिति सभाओं की जागरूकता को दर्शाती है। श्री विनोद बैद ने विभिन्न सभाओं के पदाधिकारियों के साथ व्याप्त समस्याओं के बारे में वार्ता कर उन्हें इसके बारे में आवश्यक जानकारी भी प्रदान की।

महासभा के महामंत्री श्री बिनोदकुमार चोरड़िया ने सभा भवन संचालन के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि तेरापंथ धर्मसंघ के महान जीवन-दर्शन तथा सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार और विभिन्न प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, सेवामूलक गतिविधियों का संचालन तभी सुचारु रूप से हो सकता है जब उसके लिए उपयुक्त स्थान और व्यवस्था हो। हमारे धर्मसंघ में जितनी भी सभाएं हैं, सभी ने अपने-अपने क्षेत्र में तेरापंथ भवन के निर्माण को प्राथमिकता दी है। देश के कोने-कोने में आज तेरापंथ भवन अपनी पूरी भव्यता के साथ खड़े हैं और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा मानव सेवा के महान व्रत का पालन करने में सहायक बन कर संपूर्ण तेरापंथ समाज को गर्वोन्नत कर रहे हैं।

महामंत्री ने तेरापंथ भवन में चलने वाली गतिविधियों के बारे में कहा कि भवन में अधिकाधिक धार्मिक व संघीय गतिविधियों को प्रमुखता दी जाए। साधु-साध्वीवृंद के चातुर्मासिक प्रवास व गतिविधियों का संचालन सभा भवन में ही हो। सभा भवन में **उपासना कक्ष** जरूर हो, जहां तीर्थंकरों, आचार्यों, अष्टमंगल आदि के चित्र लगे हों। श्रावक-श्राविकाएं प्रतिदिन सामायिक, स्वाध्याय, माला, जप, योगासन, प्रेक्षाध्यान आदि का अभ्यास करें। ज्ञानशाला, 'पक्खी' का सामूहिक प्रतिक्रमण, सामूहिक वाचनालय आदि का संचालन सभा भवन में संचालित किया जा सकता है, जहां विज्ञप्ति, जैन भारती, तेरापंथ टाइम्स, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि पत्र-पत्रिकाओं के साथ संघीय साहित्य भी पाठकों के लिए उपलब्ध रहे। हर 'सुदी तेरस' को भिक्षु स्वामी का जप व 'धम्म जागरण' का आयोजन भी करना चाहिए। जनोपयोगी चिकित्सा सेवाएं भी सभा भवन में उपलब्ध कराई जा सकती हैं। भवन का एक भाग उपासना स्थल के रूप में आरक्षित रहना चाहिए।

उस स्थान का उपयोग सिर्फ धार्मिक उपासना एवं तेरापंथ धर्मसंघ से संबंधित कार्यक्रमों हेतु ही किया जा सकता है।

जिन क्षेत्रों में सभा भवन हैं, वे सभाएं साधुवाद की पात्र हैं। किन्हीं कारणों से जिन क्षेत्रों में अब तक सभा भवन का निर्माण नहीं हुआ है, वे क्षेत्र अपने यहां सभा भवन का निर्माण कराने हेतु प्रयास करें। इस संबंध में महासभा उन्हें मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है।

जय तुलसी फाउंडेशन के प्रबंध न्यासी श्री सुरेंद्रकुमार दूगड़ ने 'पावर प्वायंट' के माध्यम से जय तुलसी फाउंडेशन की गतिविधियों, आर्थिक सहायता प्राप्त परिवारों की संख्या आदि के बारे में जानकारी प्रस्तुत की। उन्होंने सभा प्रतिनिधियों से आह्वान किया कि उनके क्षेत्र में शिक्षा, चिकित्सा और संपोषण के लिए यदि कोई परिवार जरूरतमंद है तो उसकी जानकारी जय तुलसी फाउंडेशन को अवश्य दें, ताकि हम उन्हें आवश्यक सुविधाएं मुहैया करा सकें।

ज्ञानशाला प्रकोष्ठ के राष्ट्रीय संयोजक श्री सोहनराज चोपड़ा ने ज्ञानशाला की उपयोगिता, उसके प्रभाव तथा बच्चों के संस्कार निर्माण में उसके योगदान का उल्लेख किया।

उपासक श्रेणी के राष्ट्रीय संयोजक श्री डालमचंद नौलखा ने कहा कि उपासक और ज्ञानशाला हमारे धर्मसंघ की मुख्य प्रवृत्तियां हैं, जिसका दायित्व प्रारंभ से ही महासभा को प्राप्त है और महासभा कुशलतापूर्वक इसका निर्वहन कर रही है। उन्होंने उपासकों की संख्या में निरंतर हो रही वृद्धि को समाज के आध्यात्मिक विकास के लिए सराहनीय कदम बताया।

मेधावी छात्र प्रोत्साहन परियोजना के संयोजक श्री के.सी. जैन ने कहा कि समाज के जितने मेधावी छात्र हैं, उन्हें एक मंच पर लाने और उनमें से किसी को अगर अर्थ की जरूरत है, तो उन्हें सहयोग करना मेधावी छात्र प्रोत्साहन परियोजना का उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि—अब तक इस योजना से अनेक मेधावी छात्र-छात्राएं लाभान्वित हुए हैं। उन्होंने 'मेधावी मित्र' के बारे में जानकारी देते हुए बताया कि जो छात्र इस योजना से जुड़े और अब 'प्रोफेशन' में हैं, या जो अपनी शिक्षा पूरी कर चुके हैं—वे 'मेधावी मित्र' में सम्मिलित हो सकते हैं।

महासभा के सहमंत्री श्री बजरंग सेठिया ने संविधान पर अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि—सभी सभाएं महासभा द्वारा सभाओं के लिए निर्धारित संविधान लागू करें।

रात्रिकालीन सत्र में पूज्यप्रवर की पावन सन्निधि में जिज्ञासा समाधान का क्रम चला, जिसका संयोजन **उपाध्यक्ष श्री विमल सुराणा** ने किया। प्रतिनिधियों से प्राप्त जिज्ञासाओं को उन्होंने पूज्यप्रवर के समक्ष प्रस्तुत किया।

आभार ज्ञापन **महासभा उपाध्यक्ष श्री सुकनराज परमार** ने किया।

कुछ विशिष्ट सभाओं के द्वारा किए गए उल्लेखनीय कार्यों की प्रस्तुति महासभा अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू द्वारा दी गई। महासभा के पदाधिकारियों के साथ सामूहिक चर्चा व जिज्ञासा का क्रम भी चला।

महासभा के उपाध्यक्ष एवं प्रतिनिधि सम्मेलन के संयोजक श्री विनोद बैद ने आचार्यप्रवर, साध्वीप्रमुखाश्री, मंत्रीमुनिश्री सुमेरमलजी, महासभा प्रभारी मुनिश्री विश्रुतकुमारजी सहित सभी चारित्रात्माओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। उन्होंने सम्मेलन के आयोजन में महासभा के कार्यकारिणी सदस्य सर्वश्री डूंगरचंद सालेचा, सलिल लोढ़ा, मनोज सिंघी, विमलसिंह बैद, नरेंद्र मणोत के अतिरिक्त प्रवास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री जसराज बुरड़, संयोजक श्री गौतमचंद सालेचा, मंत्री श्री शांतिलाल भंसाली, तेरापंथी सभा-जसोल के अध्यक्ष श्री खूबचंद भंसाली, तेरापंथ महिला मंडल एवं तेरापंथ युवक परिषद के कार्यकर्ताओं के साथ-साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े सभी लोगों के प्रति आभार प्रकट किया।

सम्मेलन के अलग-अलग सत्रों का संयोजन महासभा के सहमंत्री **श्री जी. भूपेंद्र मूथा**, कार्यकारिणी सदस्य **श्री सुशील चौरड़िया**, उपाध्यक्ष **श्री विमल सुराणा** एवं **श्री विनोद बैद,** कार्यकारिणी सदस्य **श्री विमलसिंह बैद** तथा कोषाध्यक्ष **श्री सुरेंद्र बोरड़** ने सफलतापूर्वक किया। विभिन्न सत्रों में आभार ज्ञापन महासभा के उपाध्यक्ष **श्री सुकनराज परमार** एवं **श्री विनोद बैद** तथा महामंत्री **श्री बिनोदकुमार चोरड़िया** ने किया।

प्रस्तुतकर्ता

बिनोदकुमार चोरड़िया

महामंत्री

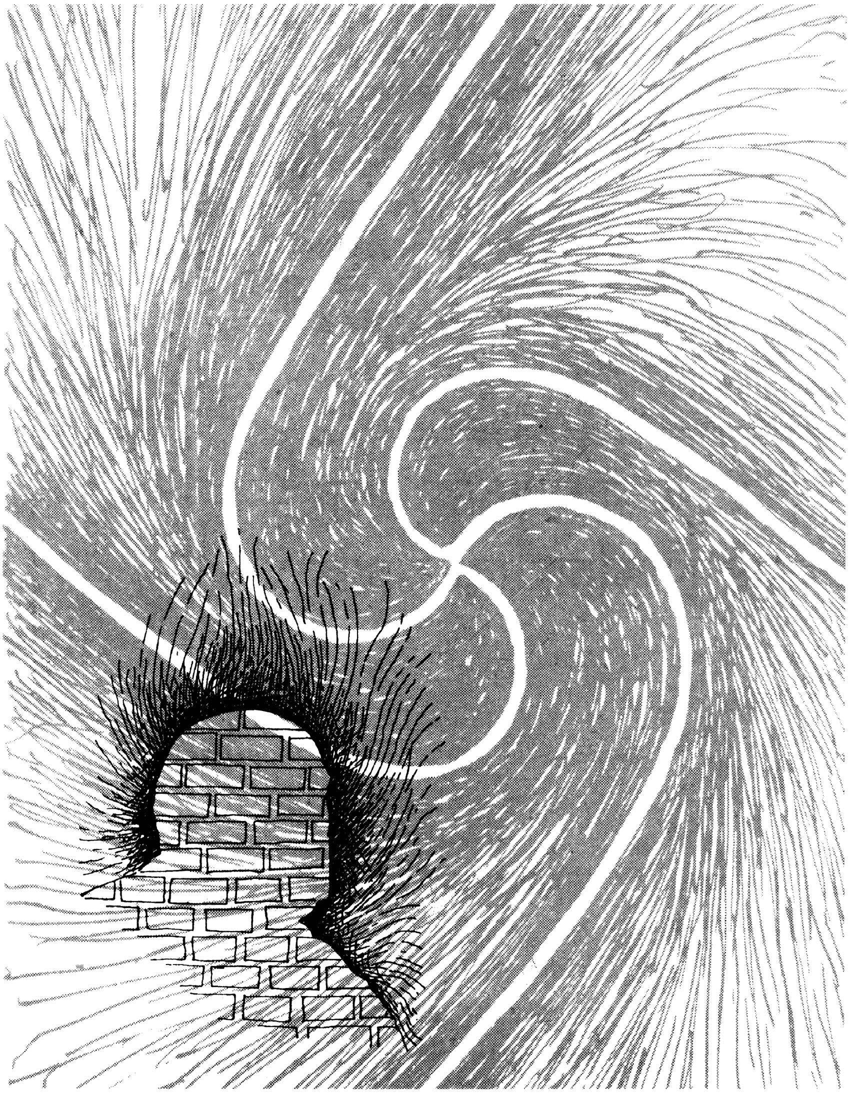

शीलन

श्रेष्ठ जन जो आचरण करते हैं, इतर जन उनका अनुकरण करते हैं। इतर जन हमेशा श्रेष्ठ के आचरण को देखता है कि वैसा स्वयं भी कर सकें। इसलिए हमारी बौद्धिक क्रियाओं का यही लक्ष्य होना चाहिए।

—डॉ. छगन मोहता

महावृक्षों और पर्वतों की छाया दूर तक पहुंचती है। भगवान बुद्ध, महावीर और महात्मा गांधी जैसों का असर समाज में असंख्य बरसों तक अपना काम करता है। इसलिए इन लोगों को हम दीर्घजीवी या चिरजीवी कहते हैं। इस प्रकार समूचे जीवन का विचार करते हुए यह कहना पड़ता है कि मृत्यु के इस तरफ का जीवन—पूर्व जीवन—छोटा होता है, केवल तैयारी के जैसा है। सच्चा और विशाल जीवन तो मृत्यु के बाद ही शुरू होता है। अलबत्ता मृत्यु के पहले का जीवन पुरुषार्थी होने के कारण उसका खूब महत्त्व है, पर मृत्यु के बाद का जीवन परिणाम-रूप होने से व्यापक और दीर्घकालिक होता है। इसलिए उसका भी महत्त्व कम नहीं है।

मृत्यु साक्षात्कार : जीवन का सर्वांगीण अनुभव

❋ काका कालेलकर

जिस तरह दिवस और रात्रि मिलकर चौबीस घंटे का दिन बनता है, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मिल कर महीना बनता है—उसी तरह जीवन और मरण मिल कर जिंदगी यानी व्यापक जीवन बनता है। जीवन दीर्घकाल पर फैला हुआ, तना हुआ होता है, जबकि मृत्यु एक क्षण की चीज है। आखिरी सांस कब आई कि जीना समाप्त हो गया। इस तरह मृत्यु एक क्षणिक घटना है।

मरण के बाद भी मनुष्य अपने समाज में जीवित रहता है। मनुष्य अपने जीवन में जो कर्म करता है, विचार प्रकट करता है, ध्यान चिंतन करता है—उसका असर उसके समाज पर होता ही है। मनुष्य ने अपने जीवन में जो-जो किया, समाज के साथ जो सहयोग किया या उसकी सेवा की, उसकी भली-बुरी विरासत उसके समाज को मिलती है और इस तरह वह समाज पर असर करता रहता है। यह उसका मरणोत्तर जीवन है।

महावृक्षों और पर्वतों की छाया दूर तक पहुंचती है। भगवान बुद्ध, महावीर और महात्मा गांधी जैसों का असर समाज में असंख्य बरसों तक अपना काम करता है। इसलिए इन लोगों को हम दीर्घजीवी या चिरजीवी कहते हैं। इस प्रकार समूचे जीवन का विचार करते हुए यह कहना पड़ता है कि मृत्यु के इस तरफ का जीवन—पूर्व जीवन—छोटा होता है, केवल तैयारी के जैसा है। सच्चा और विशाल जीवन तो मृत्यु के बाद ही शुरू होता है। अलबत्ता मृत्यु के पहले का जीवन पुरुषार्थी होने के कारण उसका खूब महत्त्व है, पर मृत्यु के बाद का जीवन परिणाम-रूप होने से व्यापक और दीर्घकालिक होता है। इसलिए उसका भी महत्त्व कम नहीं है।

मृत्यु के बाद जो जीवन जीया जाता है, उसे हमारे धर्मग्रंथों में नाम दिया है—'सांपराय'। जो लोग अज्ञानी हैं, वे 'सांपराय' को नहीं देख पाते—**'न साम्परायः**

प्रतिभाति बालम्।' पर, जो ज्ञानी हैं, जानकार हैं, वे मरणोत्तर जीवन को और उसके महत्त्व को भी पहचान लेते हैं। वे कहते हैं कि इतने बड़े महत्त्व के और सुदीर्घ 'सांपराय' को नुकसान पहुंचे—ऐसा कार्य मैं अपने जीवन में, पूर्ण तैयारी के काल में नहीं करूंगा।' बचपन में अगर क्षणिक उन्माद के कारण ब्रह्मचर्य को नष्ट किया, तो मनुष्य का सारा-का-सारा गृहस्थाश्रम बिगड़ जाता है। इसलिए दीर्घदर्शी आत्महित समझने वाला कहता है कि गृहस्थाश्रम का पूरा आनंद लेने के लिए 'ब्रह्मचर्य' का पूर्वाश्रम मैं संयम से, शुद्ध रूप से व्यतीत करूंगा।

मेधावी मनुष्य कहता है कि 'जिह्वालौल्य' को क्षणमात्र तृप्त करने के लिए अगर मैं अपथ्य आहार या अति आहार करूंगा तो दीर्घकाल तक मुझे बीमार रहना पड़ेगा और मैं आरोग्यानंद और जीवनानंद से वंचित रहूंगा। इसलिए मैं अपथ्य सेवन नहीं करूंगा। संयम के द्वारा जो उत्कट जीवनानंद प्राप्त होता है—वही करूंगा। मरणोत्तर जीवन का जिसे खयाल है और जिसको इस बात की जाग्रति और स्मृति रहती है—उसी का जीवन शुद्ध और समृद्ध होता है।

सांपराय में स्थूल देहगत जीवन का अवकाश नहीं रहता। मनुष्य अपने समाज में ही जीवित रह सकता है और उस जीवन में उसका पुरुषार्थ अथवा प्रेरणामय जीवन बढ़ता ही जाता है। इस्लाम में एक सुंदर कल्पना पाई जाती है—किसी मनुष्य ने मुसाफिर के लाभार्थ रास्ते के किनारे एक कुआं खोदा। उसके संकल्प और परिश्रम के अनुरूप इस शुभकर्म का उसे पुण्य मिला। अब दिन-पर-दिन जितने मुसाफिर उस कुएं से लाभ उठाते, उतना इस आदमी का सबाब (पुण्य) बढ़ता जाता है। अगर यात्रियों का रास्ता बदल गया और लोगों ने इस रास्ते जाना छोड़ दिया तो पुण्यकारी का पुण्यसंचय ज्यादा नहीं बढ़ेगा। पुण्यकारी का सबाबमय जीवन—पुण्य-जीवन—बढ़े या घटे, समाज के हाथ में है। लोग अगर उसे याद करते रहें, तो उसकी मरणोत्तर आयु दीर्घ होगी। लोग उसे भूल गए, उसके काम का असर मिट गया तो उसके सांपराय की मियाद खत्म हो जाएगी।

अब सवाल यह आता है कि अगर मरण के बाद हमारा जीवन सामाजिक स्वरूप का ही रहने वाला है, तो मरणपूर्व के 'इस जीवन में' हम समान-जीवन ही व्यतीत क्यों न करें? स्वार्थवश संकुचित होकर और इंद्रियवश होकर प्रमत्त जीवन, असमाजी जीवन व्यतीत क्यों करें? जिस तरह मरणोत्तर जीवन सामाजिक रहेगा, वैसा ही जीवन अगर मृत्युपूर्व व्यतीत किया तो मृत्यु के इस पार और उस पार एक ही प्रकार का शुभ जीवन होगा।

जिसे हम समाजवादी ढांचा कहते हैं, वह हमारे आध्यात्मिक, सामाजिक जीवन का ही बाह्यरूप है। जिसे हम सर्वोदयकारी पुण्य-जीवन कहते हैं—वह उसका आंतरिक स्वरूप होगा। वेदांत ने उसे नाम दिया है—विश्वात्मैक्य भावना—भूमा-स्वरूप जीवन। आत्मौपम्य उसकी साधना है।

आत्मौपम्य की यह कल्पना कुछ स्पष्ट करनी चाहिए। मनुष्य को जब भूख लगती है, तो वह आहार ढूंढ़ता है। आहार को प्राप्त करके उसका उपभोग करता है। यह हुआ प्राकृतिक जीवन। लोग इसे पशु-जीवन भी कहते हैं। लेकिन, मेरे पेट में भूख की वेदना शुरू होते ही अगर मैं औरों की भूख का साक्षात्कार करूं और उनकी क्षुधा का निवारण करने का यत्न करूं तो वह धार्मिक जीवन हुआ। वह सांपराय के लिए पोषक होगा। मैं जो कुछ भी पुरुषार्थ करूं, उसका लाभ सबको देने की अगर वृत्ति रही तो वह सर्वोदयकारी विश्वात्मैक्य प्रेरित ब्राह्मजीवन होगा। जो कुछ भी ज्ञान मैंने प्राप्त किया, वह सबको दे दूं, सबका दुख और संकट अपना ही मान लूं और सबके साथ जो मुझे मिले—उतना ही मेरा अधिकार है, ऐसा समझ कर चलूं तो मृत्यु के इस पार का और उस पार का जीवन एकरूप होगा। मृत्यु पर विजय यही है।

एक साधु छोटी-सी झोंपड़ी में रहता था। हाथ-पांव फैला कर आराम से सोता था। इतने में जोरों से बारिश आई। किसी ने बाहर से आवाज देकर पूछा—'मेरे लिए अंदर जगह है?' साधु ने कहा—'अवश्य।'—उसने अपने फैले हुए हाथ-पांव समेट लिए और दोनों पास-पास

सो गए। बारिश बढ़ी और दूसरे दो यात्री आए। उन्होंने पूछा—'जगह है?' दोनों ने कहा—'अवश्य! आप अंदर आइए।'—अब दो के चार हो गए। झोंपड़ी में सोना अशक्य था। चार आदमी बैठ कर बातें करने लगे और ऐसे ही रात व्यतीत करने का उन्होंने निश्चय किया। इतने में चार और आए। उनका भी इन चारों ने स्वागत किया। अब बैठना नामुमकिन हो गया। आठ-के-आठ झोंपड़ी में खड़े होकर भगवान का भजन करने लगे और बारिश से भगवान ने बचाया—इसका आनंद मानने लगे। यही आत्मौपम्य है। जो कुछ भी पाया—सबका है, सबके साथ समविभाग करके पाना है। आत्मौपम्य का तरीका यही है। यह आत्म-ऐक्य की साधना है।

अब अगर ऐसी साधना हम करते रहें, तो मृत्यु का डर नहीं रहेगा। मृत्यु भी जीवन-साधना का एक अंग ही है। सुख और दुख, जीवन और मरण, दोनों साधना रूप हैं। सुख और जीवन कुछ छिछले हैं। उनकी ज्ञानोपासना मंद होती है। दुख, संकट, निराशा और मरण—इनकी साधना गहरी होती है। इनके द्वारा जीवन का साक्षात्कार संपूर्ण होता है। इनकी ज्ञानोपासना तेज होती है। इसलिए साधना में इनका महत्त्व अधिक है।

अगर जिंदगी में किसी को केवल दुख ही दुख मिले, तो उसकी साधना बधिर हो जाएगी। इसके विपरीत किसी के जीवन में अगर सुख-ही-सुख रहे, तो उसका जीवन भी उथला होगा। उसका आत्मौपम्य टूट जाएगा और उसका सफल-जीवन भी साधना की दृष्टि से विफल होगा। इसलिए अगर सुख और दुख, सफलता और विफलता—दोनों प्रचुर मात्रा में मिलें—यह मृत्यु का साक्षात्कार है। मृत्यु के साक्षात्कार के द्वारा ही मनुष्य-जीवन का सर्वांगीण गहरा अनुभव हो सकता है।

अगर किसी साथी को अपने काम की पूर्वतैयारी में शरीक होने को हम बुलाएं और फलभोग के समय उसे दूर करें—तो उसे शिकायत करने का अधिकार रहेगा। जीवन के बाद मरण के अधिकार का यही न्याय है। किसी ने सुंदर शब्दों में कहा है—मरण हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है—'इट इज अवर प्रिविलिज टु डाई'—अगर किसी को मौत से वंचित रहने की सजा मिले तो मनुष्य के लिए जीना दुश्वार हो जाएगा।

ईसाई ग्रंथों में एक वचन हम पाते हैं—'पाप के फलस्वरूप मौत नाम की रोजी मिलती है'—दी 'वेजिज ऑव सिन इज डैथ'—सामान्य अर्थ में यह वचन गलत है। मरण तो सबके लिए अवश्यंभावी है। पाप बढ़ने से मनुष्य की आत्मजाग्रति क्षीण होती है। उसका जीवन आत्मविमुख और देहात्मवादी होता है।

संतों और महापुरुषों ने मृत्यु पर विजय पाने की जो बात की है, वह यही है। मामूली मौत से न बुद्ध भगवान बच सके, न महावीर। सबको शरीर छोड़ना ही पड़ा, लेकिन उन्होंने आत्मनाश रूपी मृत्यु पर विजय पाई। इसी को वे ढूंढ़ते थे।

सामान्य जन के लिए मृत्यु को पहचानना, उसका यथार्थ स्वरूप समझना, कठिन है। समझाने का कोई प्रयत्न भी नहीं होता। नहीं तो मृत्यु हमारा सबसे श्रेष्ठ मित्र है।

मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म एक चीज नहीं है। दोनों का भेद समझना चाहिए। हम मानते हैं कि मनुष्य, मृत्यु के बाद, अपने कर्मों के अनुसार नया जन्म लेता है। एक जीवन की साधना पूरी होने पर जो कुछ भी अनुभव मिला, उसे लेकर हम नए जीवन में प्रवेश करते हैं। एक पुरुषार्थी भारतीय परदेश गया। वहां परिश्रम करके अपने व्यापार का बड़ा विस्तार किया। लेकिन, बूढ़ा होने पर जब वहां का आकर्षण कम हो गया और स्वदेश आने की इच्छा हुई—तब उसने वहां की सारी प्रवृत्तियां समेट लीं। देना-पावना चुका दिया और अपनी सारी कमाई इकट्ठी करके वह भारत लौटा। मृत्यु का भी वैसा ही रूप-स्वरूप है। जब प्रवृत्ति अनहद बढ़ती है और साधना के तौर पर काम नहीं आती, तब उसका सारा फल इकट्ठा करके नए जन्म की नई प्रवृत्ति, नई साधना मनुष्य शुरू करता है। इसे एक तरह से मृत्यु कह सकते हैं। लेकिन इसके लिए दुख नहीं करते। एक स्थान छोड़ने का मामूली अल्पकालीन दुख जरूर रहता है, लेकिन वह किसी को रोकता नहीं।

जेल से मुक्ति पाने का आनंद किसी से कम नहीं होता, ठीक इसी तरह इहलोक का जीवन पूरा करते हुए मृत्यु का वरण भी ऐसा ही होना चाहिए। ❖

यद्यपि अरिहंत पद में तीर्थंकरों को लिया जाता है और सामान्य केवली को 'संयत' पद में लिया जाता है, किंतु अरिहंत, जिन और केवली शब्दों की परिभाषा के अनुसार सामान्य केवली 'जिन' हैं, अरिहंत हैं। जहां संयत व सिद्ध दो पद्य गृहीत हों, वहां संयत में भी अरिहंत का समाहार है। सिद्ध 'संयतातीत' अवस्था है। जबकि श्रमणोपासक संयत से पूर्व की भूमिका है और सिद्धत्व प्राप्ति के लिए इस का महत्त्व भी है।

वंदनीय हैं—संयत और सिद्धत्व

❁ मुनि धर्मचंद 'पीयूष'

वंदनीय कौन—इस प्रश्न का समाधान उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन के प्रथम पद्य—**'सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ'**—में उपलब्ध होता है। आत्म कल्याण के लिए सिद्धों और संयतों को नमस्कार किया जाता है। अध्यात्म के क्षेत्र में सिद्ध और संयत ही वंदनीय हैं। 'संयत' शब्द में आचार्य, उपाध्याय और सभी साधुओं का समावेश किया गया है, जो इसलिए उपयुक्त प्रतीत होता है कि महाव्रत, समिति और गुप्ति का सम्यक्तया आराधक ही 'संयत' कहलाता है। आचार की गंगा में अवगाहन करने वाला व धर्मसंघ को कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाला 'संयत' ही आचार्य बनता है और उत्कृष्टतम चारित्र का आराधक क्षपक श्रेणी में आरूढ़ संयत ही अरिहंत बनता है।

यद्यपि अरिहंत पद में तीर्थंकरों को लिया जाता है और सामान्य केवली को 'संयत' पद में लिया जाता है, किंतु अरिहंत, जिन और केवली शब्दों की परिभाषा के अनुसार सामान्य केवली 'जिन' हैं, अरिहंत हैं। जहां संयत व सिद्ध दो पद्य गृहीत हों, वहां संयत में भी अरिहंत का समाहार है। सिद्ध 'संयतातीत' अवस्था है। जबकि श्रमणोपासक संयत से पूर्व की भूमिका है और सिद्धत्व प्राप्ति के लिए इस का महत्त्व भी है।

श्रमणोपासक दो श्रेणी में विभक्त होते हैं—सम्यक्त्वी श्रमणोपासक और व्रती श्रमणोपासक। सम्यक्त्व और व्रत में प्रथम स्थान सम्यक्त्व का है—**'नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं'**—के अनुसार सम्यक्त्व के बिना न व्रत होता है, न चारित्र। अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क के उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर आत्मा चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरति सम्यक् दृष्टि बनता है, परंतु अप्रत्याख्यानावरण का उदय रहने से वह व्रती नहीं बन सकता। जैन दर्शन में आत्मा की शुद्धि का मापन गुणस्थानों के आधार पर होता है। यह तलहटी से शिखर की यात्रा है। अप्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशम होने से पंचम देश विरति गुणस्थानवर्ती श्रमणोपासक अंशतः व्रत ग्रहण करने की क्षमता पा लेता है।

श्रमणों की उपासना करने वाला या सुनने वाला श्रावक श्रमणोपासक होता है। इसकी चार श्रेणियां हैं—सुलभबोधि, सम्यक्त्वी, व्रती, पडिमाधारी। सुलभबोधि को धर्म रुचता है, अच्छा लगता है। पर, वह तत्त्वज्ञान के अभाव में सम्यक्त्वी नहीं हो सकता। सम्यक्त्वी की दृष्टि सम्यक् होती है, किंतु अप्रत्याख्यानावरण के उदय के कारण वह व्रती नहीं बन सकता। व्रती श्रावक की साधना भी छोटी नहीं होती। आत्म-संयम की प्रखर साधना करने वाला श्रमणोपासक एकाभवावतारी हो सकता है।

पडिमाधारी श्रमणोपासक 'ग्यारहवीं श्रमण भूत पडिमा' में श्रमणवत तो बन जाता है, परंतु श्रमण नहीं हो सकता। वह पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक ही होता है। 'संयत' नहीं होने से 'संयतवत' वंदनीय नहीं होता।

मुमुक्षु-आत्मा का लक्ष्य सिद्धत्व को प्राप्त करना ही होता है। यद्यपि उसे अपनी अपूर्णता का बोध रहता है और उसका वह बोध ही पूर्णता की उपलब्धि का संकेत है।—**'अप्पा सो परमप्पा'**—प्रत्येक आत्मा में ज्ञान का अंश विद्यमान है, परंतु अनंतज्ञान, दर्शन की प्राप्ति के लिए सम्यक्त्वी व 'संयत' बनना जरूरी है। वीतरागता और सिद्धत्व की ओर प्रस्थान करने के लिए गुणस्थानों का आरोहण आवश्यक है। षष्टम गुणस्थानवर्ती संयत कषाय व कर्ममुक्त होने के लिए साधना के विभिन्न उपक्रम—जैसे; स्थविरकल्प, जिनकल्प, अटहालंदक, पडिहार विशुद्ध, पडिमा स्वीकरण आदि अपनाता है। ध्येय कर्ममुक्त होने का ही रहता है। कहा गया है—**'कम्म कलंक विमुंक्को, परमप्पा भण्णए देवो'**—अष्टकर्म कलंक से विमुक्त आत्मा ही परमात्मा, सिद्धात्मा होता है।

जब कषाय प्रबल होते हैं, तब कर्म परमाणु आत्मा के साथ अधिक चिपकते हैं। कषाय मंद होते ही उनकी स्थिति और फल प्रदान करने की शक्ति कम हो जाती है। तीव्र कषाय का भार नीचे ले जाता है और अल्प कषाय का हलकापन आत्मा को ऊपर उठाता है। गुणस्थानों के आरोही 'संयत' के कषाय जैसे-जैसे मंद होते हैं, वैसे-वैसे निर्जरा अधिक होती है और पुण्य का बंध भी शिथिल हो जाता है। कषाय मुक्त वीतराग के केवल दो समय की स्थिति का पुण्य बंध होता है। पहले समय में कर्म-परमाणु संबंध करते हैं और दूसरे समय में भोग लिए जाते हैं। तीसरे समय में उनका निर्जरण हो जाता है।

सूत्रकृतांग के सूत्र में बताया गया है कि वीतराग के ईर्यापथिकी क्रिया होती है। ईर्यापथिकी क्रिया के समय वीतराग को जो सुखानुभूति होती है, उसके सामने चक्रवर्ती और देवों के सुख भी छोटे नजर आते हैं। छः खंड का शास्ता या चातुरंग चक्रवर्ती के सुख-वैभव को तराजू के एक पलड़े में रखे जाएं और दूसरे में वीतराग के सुख—तो वीतराग सुख का पलड़ा भारी पड़ेगा। जैन साहित्य में वीतराग सुख का विशद वर्णन है। शांत कषाय, अवीतराग 'संयत' का सुख भी अकल्पनीय होता है।

आत्मशुद्धि की सर्वोच्च भूमिका के चलते चौदहवें अयोग गुणस्थान में मन-वाणी-काया की सभी प्रवृत्तियां रुक जाती हैं। वहां पूर्व संचित कर्मों का ही निर्जरण होता है और वहां तेरहवें गुणस्थान की तरह दो समय का होने वाला पुण्य का बंध भी नहीं होता। वह अबंध अवस्था है। मोक्ष पुण्य-पाप, दोनों के क्षय से ही प्राप्त होता है। जैन सिद्धांत दीपिका में प्रदत्त परिभाषा—**'कृत्स्न कर्म क्षयादात्मनः स्वरूपास्थानं मोक्षः'**—के अनुसार आठ कर्मों का क्षय होने से आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनात्मक स्वरूप में अवस्थित होती है। उसका नाम ही मोक्ष है।

तैजस व कार्मण शरीर संसारावस्था में कभी नहीं छूटते। ये दोनों जब तक हैं, तभी तक संसार-भ्रमण है। इनके छूटते ही मुक्ति है। प्रश्न हो सकता है कि अनादिकालीन कर्म-संबंध का अंत कैसे हो सकता है? समाधान स्पष्ट है—प्रवाह की अपेक्षा से प्राग्भाव अनादि है, न कि बध्यमान कर्म। आत्मा के साथ जो कर्म परमाणु चिपकते हैं, वे सब अवधि सहित होते हैं। कोई भी एक कर्म आत्मा के साथ अनादि काल तक नहीं रहता, हर कर्म की अपनी कालावधि है। प्रवाहापेक्षया प्राग्भाव अनादि है, फिर भी उनका अंत होता है। संवर द्वारा कर्मास्रव रुकता है, क्रमशः अनास्रव अवस्था में नए कर्मों का आस्रव-प्रवाह सर्वथा रुक जाता है और निर्जरा द्वारा अर्जित कर्मों का निर्जरण हो जाता है। तब आत्मा मुक्त बन जाती है। अष्ट कर्म बंधन से मुक्तात्मा औदारिक, तेजस व कार्मण शरीर को छोड़कर जन्म, जरा-मृत्यु, रोग-शोक, वेदना आदि से मुक्त हो जाती है।

मुक्तात्माओं के निवास स्थान को ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी कहते हैं। उसका आकार सीधे छत्ते जैसा है और वह श्वेत स्वर्णमयी है।

सिद्धों के सुख का वर्णन उववाई सूत्र की गाथाओं में उपलब्ध है।

इन गाथाओं में सिद्धों के अव्याबाध, अप्रतिपाती सुखों का विशद वर्णन है। कहा गया है कि सिद्धों जैसा सुख न तो किसी मनुष्य को है और न देवों को। ❖

अब वह नया विशेष पुरस्कार देने की बारी आई। उपस्थित लोगों की आंखों में उत्सुकता छाई हुई थी। वह विद्यार्थी भला है कौन, जो पांच सौ से अधिक छात्र-छात्राओं में सबसे चरित्रवान छात्र के रूप में माना जाएगा। हेडमास्टर ने अध्यक्ष और उपस्थित सज्जनों को संबोधित करते हुए घोषणा की—'अब हमारे स्कूल के सबसे चरित्रवान छात्र को विशेष पुरस्कार देने की बारी है।

बालकथा

मार झेलती हथेलियां और पुरस्कार

❋ अनंतदेव शर्मा

'उफ कितना दुष्ट है—यह लड़का। इसे सीधा किए बगैर नहीं चलेगा। लड़कों के साथ इसके लड़ने-झगड़ने की कई वारदातें मैं सुन चुका हूं। बुला ला उसे।'

—'मोहन, मोहन'—'हेडमास्टर' ने चौकीदार मोहन को ऊंची आवाज में पुकारा। 'हेडमास्टर' के गरजने की आवाज से ही मोहन समझ गया कि उनका पारा चढ़ा हुआ है। तीन छलांग में वह कमरे से बाहर निकल आया और 'हेडमास्टर' के पास पहुंच कर सहमते हुए पूछा—'जी, सर!'

—'तुरंत जाकर पांचवीं कक्षा के तपन को बुला ला।'—'हेडमास्टर' ने आदेश दिया।

मोहन एकदम कमरे से निकल गया।

पदुमनि गांव के किरानी का मंझला लड़का तपन है। छरहरे कद का होने पर भी है बड़ा बलिष्ठ। रंग सांवला, बड़ी-बड़ी आंखें, फुर्तीला और साथ ही पढ़ने-लिखने में भी तेज। मगर क्या घर और क्या बाहर—उसके उपद्रवों का कोई पार नहीं। बेकार बातों में उलझने में माहिर। घर के लोग भी उससे परेशान रहते हैं। लेकिन, पहल करके या बिना कोई कारण वह किसी को परेशान नहीं करता। और, किसी से झगड़ा-टंटा भी नहीं करता। पर, अगर कोई उससे उलझे तो बस फिर उसकी खैर नहीं। अपने हम-उम्र लड़कों का तो सरदार ही है। कोई बेवजह किसी को मारे या गाली दे दे, तो उसे बता देना भर काफी है। उसे वह बिलकुल ठीक करके ही छोड़ता है। यूं कहा जाए, तो वह सही मायने में बेसहारों का सहारा है। उसके साथी जहां उसे पसंद करते हैं, वहीं उससे डरते भी हैं।

गांव के प्राथमिक स्कूल की आखिरी परीक्षा पास करने के बाद वह पंद्रह मील दूर अपने मामा के यहां चला गया था। वहां के हाई स्कूल में सालभर पढ़ने के बाद वह फिर घर लौट आया। अब गांव से डेढ़ मील दूर के ज्ञानपीठ हाईस्कूल में भरती हो गया।

इस हाईस्कूल में उसे आए अभी सिर्फ एक माह ही हुआ है। इसी बीच उसकी शिकायतें आने लगीं हैं। पदुमनि गांव के ही व्यापारी हरेन महाजन ने तपन के खिलाफ 'हेडमास्टर' से फरियाद की। 'हेडमास्टर' को दी गई अपनी अर्जी में उसने लिखा था—'कल बदमाश तपन ने लड़कों के झुंड के साथ बिना कारण

उसकी दूकान पर पत्थर बरसाए। उसके उकसाने पर दूसरे लड़कों ने दूकान में घुस कर गड़बड़ी भी की। इसलिए हेडमास्टर साहब इसका उचित फैसला करें।'

चौकीदार के साथ तपन आया और डरता हुआ 'हेडमास्टर' की ओर नजर डाल, सिर झुका कर खड़ा हो गया। 'हेडमास्टर' ने हाथ में पकड़ी बेंत हिलाते हुए कहा—'ए लड़के! तेरा ही नाम तपन है?'

—'जी सर!'—विनम्रता से जवाब दिया।

—'हूंऽऽ....! तू इन सज्जन को पहचानता है?'—पास खड़े हरेन महाजन की ओर उंगली से इशारा करते हुए 'हेडमास्टर' ने तपन से पूछा।

—'जी! इनका घर हमारे गांव में ही है।'—तपन ने पहले जैसे ही विनम्र भाव से जवाब दिया।

—'हूं! ठीक है। पर, कल शाम को लड़कों की टोली ले कर तूने इनकी दूकान पर पत्थर क्यों फेंके थे? सच-सच बता।'—'हेडमास्टर' ने आंखें तरेर कर पूछा।

—'जी सर! बंतू आदि के साथ इनकी दूकान पर मैंने पत्थर फेंके थे, यह सच है।'—तपन बोला।

—'क्यों फेंके थे पत्थर? बता?' —'हेडमास्टर' ने डांटते हुए कहा।

—'सर! यह आदमी चीजें बेचते समय ग्राहकों को ठगता है। कीमत भी ज्यादा लेता है और तौल में भी कम देता है। तिस पर कागज के ऐसे थैले बनवाए हैं, जिनकी पेंदी में मोटी-मोटी दफ्ती लगी रहती है। ऐसे थैले बनाने के लिए मोटी-मोटी गद्दियां मंगवा रखी हैं। सर, परसों सवेरे इसके यहां से एक किलो दाल ली थी। घर लाकर तौली तो सिर्फ आठ सौ ग्राम दाल निकली। थैले को फाड़कर उसकी गद्दी तौलने पर वही पचास ग्राम की निकली। शेष डेढ़ सौ ग्राम इसने तौल में कम दिया। गांव के सभी लोग इसके बारे में ऐसा ही कहा-सुना करते हैं। मैंने जब कल शाम को इससे यह बात कही, तो इसने मुझे उलटे गालियां देकर दूकान से भगा दिया था, सर। इसी कारण मैंने लड़कों को साथ लेकर इसकी दूकान पर पत्थर फेंके थे।'—तपन ने डरते-डरते, पर बेझिझक पूरी बात कही।

'हेडमास्टर' ने हरेन महाजन के चेहरे पर नजर डाली। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था। 'हेडमास्टर' ने कुछ सोचा। फिर तपन की ओर देख कर बोले—'जो भी हो, तूने यह काम अच्छा नहीं किया। किसी के यहां जाकर यों उपद्रव करना बुरा है। अगर महाजन ने गलत काम किया है, तो उसका फैसला लोग करेंगे। तुझे क्या पड़ी थी? आ, हाथ फैला....'

एक-एक कर पांच बेंत खाकर तपन कुछ देर के बाद कमरे से निकल अपनी कक्षा में चला गया। कक्षा के लड़के उसकी ओर देख कर व्यंग्य करते हुए हंस रहे थे। दो-एक ने आवाजें भी कसीं।

कुछ दिन बाद एक और घटना हो गई। घटना स्कूल की पांचवीं घंटी में हुई। तपन स्कूल के आस-पास घूमने वाले एक उद्दंड सांड को वश में करना चाहता था। तभी वह हंगामा हो गया। उसके लिए तपन अपने को अपराधी नहीं मानता। उस सांड के उपद्रवों के मारे वहां के बहुत से लोगों की नाक में दम हो गया था। कई लोगों को सींग मारकर उसने घायल कर दिया था। अगर कोई लकड़ी या डंडा लेकर आगे बढ़ता तो वह सांड तन कर उसकी ओर दौड़ पड़ता। सांड की वह 'रुद्रमूर्ति' देख कर उसके सामने जाने की हिम्मत भला कौन कर सकता था। सांड के उपद्रवों से तपन के मन में उसके प्रति एक होड़ की भावना जाग उठी थी। उसने मन ही मन सोचा—'ठहरो बच्चू! तुम्हें मैं सीधा करके ही छोड़ूंगा।'

कुछ सोच-विचार कर उस दिन विराम की घंटी में वह कहीं से एक रस्सी और एक सीटी ले आया। चुपके से सांड के पास पहुंच कर, मौके से न जाने कब और कैसे अचानक कूद कर उसकी पीठ पर सवार हो गया और घोड़े की भांति सांड के मुंह में रस्सी की लगाम लगा दी। सांड पहले तो समझ ही नहीं पाया था, लेकिन जैसे ही पता चला कि उसकी पीठ पर शासन करने वाला कोई आदमी सवार है, तब तो उसका धीरज टूट गया। बात समझ में आते ही कूद-फांद, हिल-हुल, दौड़-धूप कर कैसे भी हो उसे नीचे गिरा देने की वह कोशिश करने लगा।

उधर स्कूल में पांचवीं घंटी की पढ़ाई शुरू हो गई थी। मगर तपन का तो उधर ध्यान ही नहीं था। वह तो

सांड को वश में करने में जुटा हुआ था। सांड की उछल-कूद के बावजूद तपन अपने को संभाले हुए उसकी पीठ पर लगाम पकड़े रहा। एक बार लगाम खींचकर तपन ने सांड की पीठ पर दो-चार सांटी जमा दी। सांड बिलकुल मतवाला-सा हो उठा। वह स्कूल की चार दीवारी के अंदर घुस आया और सातवें वर्ग के बीचोंबीच होकर दौड़ने लगा। अचानक हुई ऐसी चिंतनीय घटना देखकर उस वर्ग के शिक्षक और छात्रों के होश-हवास गुम हो गए। भगदड़ मच गई। जिसे, जिधर जगह मिली उधर भागा। धक्कम-धक्के, ठेलमठेल में कौन किस पर गिरा, कोई ठिकाना न रहा। एक शिक्षक किसी तरह दौड़ते हुए बाहर निकल कर ही बच पाए। उधर सांड की कूद-फांद और उसके सींगों की चोटों से स्कूल के दरवाजे, खिड़कियों के बहुत से शीशे फूट गए। वहां भी कोई चारा न पाकर, सांड हंकड़ता हुआ बाहर दौड़ा और स्कूल के मैदान में धम्म से गिर पड़ा। तपन ने अपने को किसी तरह बचाया और कूद कर दूर जा पड़ा। सांड भी खड़ा होकर डर के मारे पीछे की ओर तेजी से दौड़ भागा··· बिलकुल हवा-सी दौड़ दौड़ते वह स्कूल की चारदीवारी से दूर निकल गया।

'हेडमास्टर' के पास तपन के खिलाफ फिर मामला आया। मामला लाने वाले खुद मास्टर थे। सांड के संबंध में शिकायत पाते ही 'हेडमास्टर' आग-बबूला हो उठे। हरेन महाजन वाली और बीच-बीच में दूसरे लड़कों की छोटी-मोटी घटनाएं याद आ जाने के कारण उनका मन और भी कड़वा हो उठा। इस उत्पाती लड़के की करतूतों के कारण ही आज स्कूल के शिक्षक और छात्रों की ऐसी दुर्गति हुई। स्कूल का नुकसान भी हुआ। 'हेडमास्टर' ने तुरंत तपन को बुला लाने के लिए चौकीदार मोहन को भेजा।

क्षण भर बाद ही मोहन के साथ तपन डरते-डरते 'हेडमास्टर' के सामने आया। तपन को देखते ही हेडमास्टर ने दांत पीसते हुए बेंत हिला-हिला कर कहा—'अरे शैतान! आज तूने उस सांड को कक्षा में क्यों घुसा दिया? बता, जल्द बता! नहीं तो······'

—'सर! मैंने जान-बूझकर सांड को कक्षा में नहीं घुसाया। मैं उसकी पीठ पर चढ़ कर उसे वश में करना चाहता था। तभी वह दौड़ कर कक्षा में घुस गया था।' सिर झुका कर तपन ने जवाब दिया।

—'भला तू 'क्लास' छोड़ कर सांड की पीठ पर चढ़ने क्यों गया था? तुझे क्या पड़ी थी?····· तो ले हाथ फैला····'—हथेली पर 'हेडमास्टर' की बेंत की पंद्रह चोटें झेल कर तपन अपनी कक्षा में आया। घृणा और व्यंग्य की हंसी से उसके वर्ग के लड़कों ने उसका स्वागत किया। इस घटना के बाद तपन समूचे स्कूल में एक बुरे लड़के के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कुछ ही देर बाद हर वर्ग में हेडमास्टर की सूचना आई। सूचना में लिखा था—'वर्ग चालू रहते समय पांचवें वर्ग के छात्र तपन ने एक सांड की पीठ पर सवार होकर सातवें वर्ग में घुस कर शिक्षक और छात्रों की दुर्गति की तथा स्कूल के शीशे तोड़े। इस अपराध के कारण उसे पंद्रह बेंत लगाई गई है और क्षतिपूर्ति-के रूप में उस पर पचीस रुपए का जुर्माना किया गया है। भविष्य में ऐसा काम करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया जाएगा।'

× × ×

उसी दिन शाम को 'हेडमास्टर', 'स्कूल' से लौट कर पदुमनि गांव की तरफ घूमने निकले। वे बीच-बीच में यों ही टहला करते हैं। गांव से वापस लौटते समय स्कूल के उस धूमकेतु लड़के तपन की एक और करतूत देख कर वे विस्मित हो उठे। एक भिखारिन को, भीख मांगने की उसकी टोकरी अपने सिर पर लिए तथा एक हाथ से उस बुढ़िया भिखारिन को पकड़े तपन चला जा रहा था। कुछ ही दूरी पर उसी की कक्षा के दो-एक लड़के उस बुढ़िया की टोकरी सिर पर रखने के कारण तपन की हंसी उड़ाते जा रहे थे।

बात कुछ इस तरह थी कि गांव से भीख मांग कर लौटते हुए उस बुढ़िया को जोरों का बुखार चढ़ आया था। टोकरी ले चलना तो दूर, खुद अपने कदम बढ़ाना भी उसके लिए मुश्किल हो रहा था। बुढ़िया की ऐसी बुरी हालत देख कर तपन के मन में बड़ी वेदना हुई। उसने

तुरंत टोकरी को अपने सिर पर लिया और कहा—'बूढ़ी दादी! मेरा हाथ पकड़ कर चले चलो।'—और बुढ़िया को हाथ से पकड़े वह उसके घर की ओर चल पड़ा था।

'हेडमास्टर' को आते देख कर दूसरे दोनों लड़कों ने उन्हें नमस्ते किया और तपन की ओर देखते हुए व्यंग्य से हंस दिए। मतलब कि तपन की करतूत 'हेडमास्टर' महोदय खुद ही अब देख लें। 'हेडमास्टर' ने असली बात का पता लगाने के लिए बुढ़िया से ही पूछ लिया। बुखार से कांपते हुए बुढ़िया ने सारी बात बता दी। तपन की ओर उंगली दिखा कर उसने कहा—'बाबा, यह बच्चा अगर न होता तो आज मुझे इसी सड़क के किनारे पड़े रहना पड़ता। भगवान इस लाल का भला करे। उन दोनों लड़कों ने भी मेरी हालत देखी थी, मगर मदद करना तो दूर, उलटे मेरी मदद करने के कारण इस बच्चे की ही खिल्ली उड़ाते आ रहे हैं। कैसे निर्दयी हैं ये।'—कहती हुई बुढ़िया थकावट के मारे हांफने लगी।

दो हफ्ते बाद 'हेडमास्टर' मधुकुछि गांव से टहलते हुए डेरे की ओर लौट रहे थे। राह में एक दृश्य देख कर तो वे दंग ही रह गए। उन्होंने देखा—उस उपद्रवी सांड की एक टांग किसी ने तोड़ डाली है और तपन कुछ जंगली पौधों का रस निचोड़ कर उस पर डाल रहा है और कपड़े की पट्टी बांध रहा है। उसकी आंखें भरी हुई हैं। 'हेडमास्टर' जब वहां आकर खड़े हुए तो वह चौंक-सा गया और उसने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। 'हेडमास्टर' ने तपन की आंखों की ओर देखते हुए पूछा—'तपन, तू यहां कर क्या रहा है?'

—'सर! किसी दुष्ट लड़के ने इस बेचारे की एक टांग तोड़ डाली है। इसे बड़ी तकलीफ हो रही है। सर! यह अनबोला जीव है। आदमी जैसी चीख-पुकार नहीं मचा सकता। अनबोले जीव को इस तरह से तकलीफ देना तो बुरा है, सर!'—तपन ने बड़े दुखी मन से 'हेडमास्टर' से कहा।

—'अरे तूने इसी सांड को तो 'बड़ा दुष्ट है' कह कर उस दिन लगाम लगा कर दौड़ाया था? फिर आज यह तेरे लिए इतना भला कैसे हो गया?'

—'सर! पहले यह सचमुच ही दुष्ट था। यह सच है, सर! मगर, जिस दिन मैंने इसे लगाम डाली थी, उसी दिन से यह सुधर गया। अब आदमी को मारना तो दूर, आदमी को देखते ही डर के मारे राह से हट जाता है। सर! ऐसी हालत में बेचारे को यों मारना उचित नहीं था। इसे बड़ी तकलीफ हो रही है, सर। इसी कारण, मैं ही इसका घाव धोकर, जंगली पत्तियों का रस निचोड़ कर पट्टी बांधे दे रहा हूं। पिताजी ने बताया था सर! ये जंगली पत्तियां घाव की अच्छी दवा हैं।'—तपन ने जवाब दिया।

सांड की तकलीफ से तपन का मन भी भारी था। आंखें डबडबाई थीं।

'हेडमास्टर' ने क्षण भर कुछ सोचा। इसके बाद तपन के चेहरे की ओर देखते हुए प्यार से उसके गालों को सहलाया। पर, कुछ कहा नहीं। वहां से वे अपने घर की ओर चल पड़े। उनकी आंखें भी भर आईं थीं। सांड के लिए नहीं, तपन के लिए।

ज्ञानपीठ हाईस्कूल में पुरस्कार-वितरण समारोह का दिन। दो बजे से सभा का आयोजन था। गुवाहाटी के किसी कालेज की प्रबंध समिति के अध्यक्ष को समारोह की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया था। हेडमास्टर खीन बरूआ ने अन्य पुरस्कारों के अलावा इस बार एक विशेष पुरस्कार देने की भी व्यवस्था की थी। घोषणा कर दी गई थी कि स्कूल के सबसे उत्तम चरित्रवान लड़के को यह पुरस्कार दिया जाएगा।

वह पुरस्कार महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री के जीवन चरित्र की पुस्तकों पर आधारित था। इस नए पुरस्कार के बारे में सभी वर्गों के लड़के आपस में चर्चा कर रहे थे।

समारोह आरंभ हुआ। अध्यक्ष के आसन ग्रहण करने के बाद सचिव ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। फिर लड़के-लड़कियों के नृत्य-गीत, कविता आदि कार्यक्रम हुए। उपस्थित सज्जनों की ओर से दो-चार व्यक्तियों ने भाषण दिए। अध्यक्ष के भाषण के पश्चात् पुरस्कार वितरण आरंभ हुआ। विभिन्न विषयों में कई छात्र-छात्राओं को पुरस्कार मिले। जनता की तालियों के बीच

तथा अध्यक्ष के हाथों पुरस्कार प्राप्त कर सबने गौरव का अनुभव किया।

अब वह नया विशेष पुरस्कार देने की बारी आई। उपस्थित लोगों की आंखों में उत्सुकता छाई हुई थी। वह विद्यार्थी भला है कौन, जो पांच सौ से अधिक छात्र-छात्राओं में सबसे चरित्रवान छात्र के रूप में माना जाएगा। हेडमास्टर ने अध्यक्ष और उपस्थित सज्जनों को संबोधित करते हुए घोषणा की—'अब हमारे स्कूल के सबसे चरित्रवान छात्र को विशेष पुरस्कार देने की बारी है। यह पुरस्कार पांचवें वर्ग के विद्यार्थी श्री तपनकुमार हाजारिका को देना तय हुआ है।'

'हेडमास्टर' की यह घोषणा सुनते ही वहां उपस्थित स्कूल के इक्कीस शिक्षकों और पांच सौ से अधिक छात्र विस्मित रह गए। 'हेडमास्टर' की जुबान से अपना नाम सुन कर तपन को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। इसीलिए घोषणा सुन कर भी पुरस्कार हेतु उठ कर जाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। तभी 'हेडमास्टर' ने फिर से 'तपनकुमार हाजारिका, पांचवां वर्ग'—कहकर पुकारा तो लगा कि जैसे उसके सिर में चक्कर आ गया हो। स्कूल में जो 'सबसे बुरा लड़का' के रूप में चर्चित है, भला उसे ही क्यों 'उत्तम चरित्रवान छात्र' का पुरस्कार देने को पुकारा जा रहा है?

किसी तरह उठ कर तपन समारोह के अध्यक्ष के निकट पहुंचा और प्रणाम किया कि हेडमास्टर ने स्वयं बताना शुरू किया—'तपन ने किस प्रकार बुढ़िया भिखारिन की मदद की थी। किस तरह से उसने बेजुबान जीव उस सांड की सेवा की थी। तभी तालियों से सभा गूंज उठी। तभी तपन ने पुरस्कार ग्रहण करने के लिए अपने हाथ आगे बढ़ाए। तपन की आंखों में खुशी के आंसू छलक पड़े। उसने पुरस्कार ग्रहण किया। तभी 'हेडमास्टर' साहब आगे बढ़े। पीठ थपथपाते हुए अपनी ओर से पुरस्कार के रूप में कुछ धन उसकी हथेली पर रख दिया।

उन्हीं हथेलियों पर, जिन पर कभी तपन को बेंत की मार झेलनी पड़ी थी। ❖

असमिया से अनूदित : *नवारुण वर्मा*

कहानी : **पलायन तो उड़ना होता है**

पृष्ठ 40 का शेष

दिखाया। आखिरी हथियार था—मेरे पास। परीक्षण असफल। खिड़की से 'रियली सॉरी' का वास्तविक दुख और मैं मुंबई में अकेला—हताश, निराश। मेरे आज तक कमाई हुई 'क्वालीफिकेशन', मां-बाप, भाई-बहिन, देश-परदेश का मोह और खुद अपना अस्तित्व—सारा खतम। आस्तिक था, परंतु नास्तिक हुआ। ऊपर वाले को याद किया, परंतु गाली देकर। परंतु **कुपुत्रो आयेतः क्वाचिदपी कुमाता न भवति**। यही तो एक मंत्र मुझे याद है। तुरंत मेरे सामने दो जन। मैं अपनी फ्रैंचकट दाढ़ी को कुरेद रहा था कि एक ने पूछा—'आर यू जोसेफ?'—तो अनायास ही बोल पड़ा—'नो, आई एम डैनियल।'—'ओह सॉरी। किधर जाना है, दिल्ली। टिकट मांगता?— यस—थ्री फिफ्टी में कनफर्म, योर एज? थर्टी टू। थर्टी सेवन चलेगा। टिकट नेम राजेंद्र सिंह। अभी फोर ट्वंटी पर ट्रेन जाएगा। आफ्टर हाफ ऐन आवर टिकिट का चार्ज फोर हंड्रेड। प्लीज हैव ए कप ऑफ टी।'—अपनी प्राब्लम सुनाई, तार दिखाया।

किसी तरह चाय के पैसे भी उन्होंने ही दिए और मुझ पर बगैर बाप के साया का रहम खाकर 10 रुपए कम कर दिए। हम अपार सुख का अनुभव करते हुए उन्हें धन्यवाद देते हुए उठे। उन्होंने टिकट निकाल कर बढ़ा दिए। आखिर आदमी के काम आदमी ही आता है। मशीन तो यंत्र है, यंत्र-तंत्र कहीं पर भी खराब हो सकता है। इसे ही तो आदमी चलाता है।

यही सोचते-सोचते मैं राजधानी में बैठा-बैठा दिल्ली पहुंचा और दिल्ली से ऋषिकेश और रात में ट्रक से विशाल पर्वतों की नीरवता को चीरते हुए किसी तरह बूढ़ी मां और नादान भाई-बहिनों की सुबकियों और चुप्पी में अपने पहुंचने की विजय पताका फहरा रहा था। ❖

(समाप्त)

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

SKF

Authorized Stockist

Manish Enterprises

Authorised Stockist : SKF Bearings

Sales & Admin. Off.
20, Netaji Subhash Road
(Gr. Floor) Kolkata 700001

Phone : 22102413, Telefax : 22102414, Mobile : 98300 65260

E-mail : manish.brg@gmail.com
Website : www.manishenterprises.net

Amar Chand Bardia
Sushil Kumar Bardia
Manish Bardia

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

जैन भारती, अक्टूबर, 2012 ■ प्रेषण दिनांक 28 सितंबर, 2012
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।